

त्रिकोणे संस्थितो मेरुंधः कोणेतु मन्दरः ।  
दक्षिणे चैव कैलासो वामकोणे हिमालयः ॥ १२ ॥

त्रिकोण में सुषेरु, निचले कोण में मन्दराचल, दक्षिण कोण में कैलास और वाम कोण में हिमालय है ॥ १२ ॥

निषधश्चोर्ध्वभागे वै दक्षिणे गन्धमादनः ।  
रमणो वामरेखायां समैते कुलपर्वताः ॥ १३ ॥

उर्ध्वभाग में निषध, दक्षिण में गन्धमादन और वामरेखा में रमण पर्वत है ये सात कुलपर्वत कलेवर में टिके हैं ॥ १३ ॥

अस्थिस्थाने गतं जम्बु शाकं मज्जासु संस्थितम् ।  
कटिदेशे भवेत्प्रक्षं क्रौञ्चः शिरसि वर्तते ॥ १४ ॥

हाड़ों में जम्बूदीप, मज्जा में शाकदीप, कमर में प्रक्षदीप और शीश में क्रौञ्चदीप वर्तता है ॥ १४ ॥

त्वचायां शालमलीदीपं गोमेदं रोमसंचये ।  
नखस्थं पुष्करं दीपं सागरास्तदनन्तरम् ॥ १५ ॥

खाल में शालमलीदीप, रोमसमूहों में गोमेददीप और पुष्करदीप नखों में रहता है और इसके अनन्तर समुद्र रहते हैं ॥ १५ ॥

क्षीरोदश्च तथा मूत्रे क्षीरोदसागरोरसे ।  
सुरोदधिः श्लेष्मसंस्थो मज्जायां घृतसागरः ॥ १६ ॥

मूत्र में खारा समुद्र, रसमें क्षीरसागर, कफ में सुरा का समुद्र और चर्वी में धी का सागर है ॥ १६ ॥

दन्तेष्विक्षुरसं तस्थौ शौणिते दधिसागरम् ।  
सलिलं लम्बिकास्थाने गर्भोदं शुक्रसंस्थितौ ॥ १७ ॥

दांतों में पौँडे का रस, रुधिर में दही का सागर, लम्बिका में सलिलसमुद्र और वीर्यस्थान में गर्भोदसमुद्र है ॥ १७ ॥

नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे तु चन्द्रमाः ।  
लोचनाभ्यां कुजो झेयो हृदये बुधसंज्ञितः ॥ १८ ॥

नादचक्र में सूर्य स्थित है, विन्दुचक्रमें चन्द्रमा है, लोचनों में मङ्गल जानना चाहिये और हृदय में बुध रहता है ॥ १८ ॥

विष्णुस्थाने गुरुं विद्याच्छुक्रः शुक्रे व्यवस्थितः ।

नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुवर्यवस्थितः ॥ १९ ॥

विष्णुस्थानमें बृहस्पति, वीर्यस्थान में शुक्र, नाभिस्थान में शनैश्चर और मुख में राहु इका रहता है ॥ १९ ॥

वायुस्थाने स्थितः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम् ।

विभक्तं च समाख्यातमापदां नियतं पदम् ॥ २० ॥

वायुस्थानमें केतु रहता है यह शरीर में ग्रहों का मण्डल विभक्त होता हुआ कहागया जो कि निश्चयकर आपदाओं का स्थान है ॥ २० ॥

इति शारीरकाख्यायः ॥

अथ सृष्टिक्रमं व्याख्यायते ।

आत्मा ज्योतिश्चिदानन्दरूपो नित्यश्च निस्पृहः ।

निर्गुणः प्रकृतेर्योगात्सगुणः कुरुते जगत् ॥ १ ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणास्ते प्रकृतिः समाः ।

सा जडापि जगत्कर्त्री परमात्मचिदव्ययात् ॥ २ ॥

अब सृष्टिक्रम कहते हैं—आत्मा ज्योतिःस्वरूप, चिदानन्दरूप, नित्य, निस्पृह और निर्गुण है वह प्रकृति के योग से इच्छावान् होकर जगत् को रचता है सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण समान होनेसे 'प्रकृति' कहलाते हैं और न्यूनाधिक यानी कमवद होकर 'विकृति' कहते हैं वह प्रकृति स्वयं जड़ होकर भी अविनाशी सच्चिदानन्द परमात्मा के सहारे से जगत् को बनाती है ॥ १ । २ ॥

अथ सुश्रुतोपदेशं कुर्वाणो धन्वन्तरिः प्रकृतिस्वरूपमाह—

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूप-  
मखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नामेति ॥ ३ ॥

अब सुश्रुत का उपदेश करतेहुए धन्वन्तरिजी प्रकृति के स्वरूप विशेषण को कहते हैं—  
अव्यक्त ( मूलप्रकृति ) सर्व प्राणियों की ( समकार्य ) कारण स्वयं अकारण तथा सम  
सत्त्व रज तम स्वरूपवान् होकर अव्यक्त, महान्, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा ऐसे आठ रूप  
वाली तथा अखिल जगत् की संभवका हेतु है ॥ ३ ॥

उभावप्यनादी उभावप्यनन्तावुभावप्यलिङ्गावुभावपि  
नित्यावुभावप्यपरावुभावपि सर्वगताविति ॥ ४ ॥

प्रकृति-पुरुष दोनों अनादि, दोनों अनन्त, दोनों अलिङ्ग, दोनों नित्य, दोनों जपर  
और दोनों सर्वगत ( सर्वव्यापक ) हैं ॥ ४ ॥

एका तु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी ।  
प्रसवधर्मिण्यमध्यस्थधर्मिणी चेति ॥ ५ ॥

प्रकृति-पुरुषका वैधर्म्य दिखाते हैं—कि, एक प्रकृति चैतन्यता रहित, तीन गुणवाली,  
बीजधर्मिणी, प्रसवधर्मिणी और अमध्यस्थधर्मिणी है यानी सुख दुःखादि की भोगने  
वाली है ॥ ५ ॥

पुरुषस्तु चेतनावान्निर्गुणोऽप्रसवधर्माऽबीज-  
धर्मा मध्यस्थधर्मा चेति ॥ ६ ॥

पुरुष—चेतनावान् ( चैतन्यतायुक्त ) गुणरहित, अनुत्पत्तिकर्ता होकर अबीजधर्मा होता  
हुआ मध्यस्थधर्मा यानी सुख-दुःख-इच्छा और दोषादि से उदासीन बना रहता है ॥ ६ ॥

प्रकृतिनामानि—

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा ।  
एतानि तस्या नामानि पुरुषं या समाश्रिता ॥ ७ ॥

अब प्रकृति के नाम कहते हैं कि, प्रधान, प्रकृति, शक्ति, नित्य और अविकृति ये  
५ उस प्रकृति के नाम हैं जो कि पुरुष के आश्रित रहती है ॥ ७ ॥

प्रकृतिगुणानाह—

सत्त्वं रजस्तमस्त्रीणि विज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः ।  
तैश्च युक्तस्य चित्तस्य कथयाम्यखिलान् गुणान् ॥ ८ ॥

सत्त्व, रज और तम ये तीन प्रकृति के गुण जानने चाहिये उन गुणों से युक्त चित्तके  
सारे गुणों को मैं कहता हूँ ॥ ८ ॥

सत्त्वादियुक्तमनोलक्षणान्याह—

आस्तिक्यं प्रविभज्य भोजनमनूतापश्च तथ्यं वचो  
मेधाबुद्धिद्विक्षमाश्र करुणा ज्ञानं च निर्दम्भता ।  
कर्मानिन्दितमस्थृं च विनयो धर्मः सदैवादरा-

देते सत्त्वगुणान्वितस्य मनसो गीता गुणा ज्ञानिभिः ॥ ६ ॥

वेद, शास्त्र, लोक व परलोक में विश्वास रखना, कूदम्ब को बांटकर भोजन करना, क्रोधरहित, सत्य वचन बोलना, मेघा, बुद्धि, धृति, क्षमा, करुणा, ज्ञान, निर्दम्भता, अनिन्दितकर्मकर्ता, निष्काम विनय और सदैव धर्मका आदर करनेवाला ये सतोगुणयुक्त मनके गुण ज्ञानियोंने गाये हैं ॥ ६ ॥

रजोगुणयुक्तमनोलक्षणान्याह—

क्रोधस्ताडनशीलता च बहुलं दुःखं सुखेच्छाधिका  
दम्भः कामुकताऽप्यतीकवचनं चाधारताहंकृतिः ।  
ऐश्वर्यादभिमानितातिशयितानन्दोऽधिकश्चाटनं  
प्रख्याता हि रजोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥ १० ॥

क्रोध, ताडनशीलता, धना दुःख, अधिक सुखेच्छा, कपट, कामुकता, भूटा वचन, सहन-शीलता, अहंकार, ऐश्वर्य से अभिमानता, अत्यन्त आनन्द और पृथकी में बहुत विचलना ये रजोगुणयुक्त चित्त के गुण कहाते हैं ॥ १० ॥

तमोगुणयुक्तमनोलक्षणान्याह—

नास्तिक्यं सुविषेतातिशयितालस्यं च दुष्टामतिः  
प्रीतिर्निन्दितकर्मशर्मणि सदा निदालुताहर्निशम् ।  
अज्ञानं किल सर्वतोऽपि सततं क्रोधान्धता मूढता  
प्रख्याताहि तमोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥ ११ ॥

नास्तिकपना, अतिखेद, अत्यन्त आलस्य, दुर्मति, निन्दितकर्म में प्रीति सदैव रखना, दिन राति सोना, सर्वत्र अज्ञान, सदैव क्रोध से अन्धा बना रहना और मूढता ये तमोगुणयुक्त चित्त के गुण कहलाते हैं ॥ ११ ॥

तत्र प्रभूतसत्त्वस्तु सात्त्विकः पुरुषः स्मृतः ।

राजसस्तामसश्चैव त्रिविधस्तेन मानवः ॥ १२ ॥

वहाँ अधिक सतोगुणवाला पुरुष सात्त्विक कहलाता है इसी प्रकार राजसी व तामसी कहेजाते हैं उसीसे मानव तीन भाँति के होते हैं ॥ १२ ॥

महत्तत्त्वोत्पत्तिमाह—

ततोऽभवन्महत्तत्वं बुद्धितत्त्वापराभिधम् ।  
त्रिगुणं सत्त्वबहुलं निर्मलं स्फटिकोपमम् ॥

चिच्छाया प्राप्तैतन्यं तदिच्छामयमीरितम् ॥ १३ ॥

उस प्रकृति से महत्त्व प्रकट हुआ और उसका दूसरा नाम बुद्धितत्त्व भी है यह 'त्रिगुण अधिक सत्त्ववाला' व निर्मल होकर स्फटिक के समान है तथा चिच्छाया अर्थात् चिदानन्द की व्याया से चैतन्यता को प्राप्त होकर उस परमात्मा की इच्छामय कहा है यद्यपि उस महत्त्व में प्रकृति के तीनों गुण विद्यमान रहते हैं तो भी सत्त्वगुण की अधिकता है इसका यह अभिप्राय है कि जैसे निश्चल सरोवर में बहुतसी वस्तुओं के गेरने से उसका जल बढ़ता जाता है ऐसेही चिद्रूपपुरुष के आक्रमण होने से तुल्य गुणत्रयात्मिका प्रकृतिका ज्ञानहेतु प्रकाश ऐसा सतोगुण बढ़ता है, फिर बड़े हुए सतोगुण से प्रकृति का सत्त्वबहुल बुद्धितत्त्व हुआ ॥ १३ ॥

महतस्त्रिगुणाजातोहंकारस्त्रिगुणान्वितः ।

सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चेति स त्रिधा ॥ १४ ॥

त्रिगुणात्मक महत्त्व से त्रिगुणात्मक अहंकार प्रकट हुआ सात्त्विक, राजस और तामस इन भेदों से वह तीन प्रकार का होता है ॥ १४ ॥

जातानि सात्त्विकात्तस्मादिन्द्रियाणि सराजसात् ।

तानि श्रोत्रं त्वचो नेत्रं रसना नासिका तथा ॥

वाग्घस्तचरणोपस्थं गुदान्येकादशो मनः ॥ १५ ॥

रजोगुणसमेत उस सात्त्विक अहंकार से इन्द्रियां उपजी हैं उनको कहते हैं कि, कान, खाल, नेत्र, जीभ, नाक, वाणी, हाथ, पांच, लिङ्ग, गुदा और ग्यारहवां मन है ॥ १५ ॥

पञ्चबुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्नानीतराणी च ।

कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथयन्ति विपश्चितः ॥ १६ ॥

बुद्धिके आश्रित होनेसे पहली पांच बुद्धीन्द्रियां यानी ज्ञानेन्द्रियां कहाती हैं और दूसरी पांचों को परिणितों ने कर्मेन्द्रियां कहा है ॥ १६ ॥

मनोबुद्धीन्द्रियं विज्ञैः कर्मेन्द्रियमपि स्मृतम् ।

मनोधिष्ठितमेवेदभिन्द्रियं यत्प्रवर्तते ॥ १७ ॥

विद्वानों ने मन को बुद्धीन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय भी कहा है यानी ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियों का परिणितों ने मनही अधिष्ठान कहा है क्योंकि मनके वशीभूत होकर इन्द्रियां अपने अपने कर्मों को करती हैं ॥ १७ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धो ह्यनुक्रमात् ।

बुद्धीन्द्रियाणां विषयाः समाख्याता महर्षिभिः ॥ १८ ॥

कर्णेन्द्रिय का विषय शब्द, त्वचाका विषय स्पर्श, नेत्रों का विषय रूप, जिहा का विषय रस और नासिका का विषय गन्ध ये क्रम से बुद्धीन्द्रियों के विषय महर्षियों ने हैं ॥ १८ ॥

वाच्यं ग्राह्यं च गन्तव्यमानन्दं त्याज्यमेव च ।  
कर्मेन्द्रियाणां विषया ज्ञातव्यं विषयो हृदः ॥ १९ ॥

वाणी का विषय बोलना, हाथोंका विषय लेना—देना, पैरों का विषय चलना, लिङ्गे-द्रय का विषय आनन्द भोगना और गुदाका विषय मलका त्याग करना ये कर्मेन्द्रियों के विषय हैं और ज्ञातव्य (जानना) मनका विषय है ॥ १९ ॥

तामसादप्यहंकारात्तन्मात्राणि सराजसात् ।  
पञ्चालपसत्त्वसन्वन्धात्तलिङ्गानि भवन्ति हि ॥ २० ॥

राजस अहंकार सभेत तामस अहंकार से भी पञ्चतन्मात्रायें प्रकट हुईं, इनमें सतोगुण अलपसम्बन्ध होने से राजस और तामस के मोहादिक लिङ्ग (चिह्न) मिलते हैं ॥ २० ॥

शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रकम् ।  
रसतन्मात्रकं गन्धतन्मात्रमिति तानि तु ॥ २१ ॥

शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा ये पांच तन्मात्रा ननी चाहियें उनको योगीतोग ही जानते हैं ॥ २१ ॥

तन्मात्रेभ्यो वियद्वायुर्वह्निर्वारि वसुन्धरा ।  
एतानि पञ्च जायन्ते महाभूतानि तत्क्रमात् ॥ २२ ॥

उन तन्मात्राओं से एकोत्तरवृद्धि करके आकाश आदि पञ्चभूत प्रकट होते हैं, जैसे कि अदतन्मात्रा से शब्दगुणवाला आकाश, शब्दतन्मात्रा सहित स्पर्शतन्मात्रा से शब्द, स्पर्शगुणवाला पवन प्रकट हुआ, शब्दतन्मात्रा व स्पर्शतन्मात्रा सहित रूपतन्मात्रा से शब्द, स्पर्श, रूपगुणवाला अग्नि प्रकट हुआ, शब्द स्पर्श, रूपतन्मात्रा सहित रसतन्मात्रा से शब्द, स्पर्श, रूप, रसगुणवाला जल प्रकट हुआ एवं शब्द, स्पर्श, रूप, रसतन्मात्रा सहित गन्धतन्मात्रा से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धगुणवाली पृथ्वी प्रकट हुई ॥ २२ ॥

शब्दः श्रोत्रेन्द्रियं वापि छिद्राणि च विविक्तता ।  
वियतः कथिता एते गुणा गुणविचारिभिः ॥ २३ ॥

शब्द, कर्णेन्द्रिय, छिद्र (शिरा, स्नायु, अस्थि, पेशी आदि) शारीरिकभावों का जाति ग्रहण करके आपस में अलग अलग होना ये आकाश के गुण गुणविचारियों ने कहे हैं ॥ २३ ॥

स्पर्शस्त्वगिन्द्रियं चापि लघुता स्यन्दनं तनोः ।

चेष्टाः सर्वशरीरस्य वायोरेते गुणाः स्मृताः ॥ २४ ॥

स्पर्श का होना, त्वगिन्द्रिय, हलकापना, देह का कुछ कुछ हिलना और सर्वदेह की चेष्टा होना ये पवन के गुण कहे हैं ॥ २४ ॥

रूपं नेत्रेन्द्रियं पाकः संतापस्तीक्षणता तथा ।

वर्णै भ्राजिष्णुतामर्पः शौर्यं वह्नेगुणा अमी ॥ २५ ॥

रूप, नेत्रेन्द्रिय, पाक ( उदर की आगी से आहार का पचना ) संताप ( गरमी ) तीक्षणता ( शीघ्रकारित्व ) वर्ण ( गौरादि ) भ्राजिष्णुता ( दीसि ) अमर्प ( क्रोध ) और शूरता ये अग्नि के गुण हैं ॥ २५ ॥

रसो रसेन्द्रियं शैत्यं स्नेहश्च गुरुता तथा ।

सर्वद्रव्यसमूहश्च शुक्रं वारिगुणाः स्मृताः ॥ २६ ॥

रस, रसेन्द्रिय, शीतलता, चिकनाई, भारीपना, समस्त द्रवपदार्थों का एकत्र होना और वीर्य ये जल के गुण कहे हैं ॥ २६ ॥

गन्धो ग्राणेन्द्रियं चापि काठिन्यं गौरवस्तथा ।

वसुन्धरा गुणा एते गदिता गुणवेदिभिः ॥ २७ ॥

गन्ध, नासेन्द्रिय, कठोरता, भारीपना ये गुणज्ञाताओं ने पृथ्वी के गुण कहे हैं ॥ २७ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तत्क्रमात् ।

तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ॥ २८ ॥

स्थूलभाव को प्राप्त होकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये शब्दतन्मात्रादि के क्रम से तन्मात्राओं के विशेष हैं यानी अनुभव योग्य सुख दुःख मोहरूप धर्म विशेष हैं परन्तु अतिसूक्ष्म होने से तन्मात्रा सुखादिक के विशेष नहीं हैं ॥ २८ ॥

प्रकृतेः कारणा योगान्मता प्रकृतिरेव सा ।

महत्तत्त्वादयः सप्त शक्तेविकृतयः स्मृताः ॥ २९ ॥

सब की कारणरूप होने से यानी कार्यरूप न होने से प्रकृति को ही प्रकृति माना है और महत्तत्त्वादिक सातों उस प्रकृति की विकृतियां कही हैं प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, और पांच तन्मात्रा ये आठ प्रकृतियां कहलाती हैं ॥ २९ ॥

इन्द्रियाणां च भूतानां कारणत्वान्महर्षिभिः ।

महत्तत्त्वादयः सप्त प्रोक्ताः प्रकृतयोपि च ॥ ३० ॥

इन्द्रियों के कार्य और भूतों के कारण होनेसे महत्तत्त्वादि सातों को भी महर्षियों ने प्रकृति कहा है ॥ ३० ॥

दशेन्द्रियाणि चित्तं च महाभूतानि पञ्च च ।

एतानि सृष्टिं जानद्विर्विकाराः पोडश स्मृताः ॥ ३१ ॥

दश इन्द्रियां, चित्त और पञ्चमहाभूत इनको सृष्टि ज्ञाताओं ने सोलह विकार ( कार्य ) कहे हैं ॥ ३१ ॥

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वर्ण्गृहे ।

जीवात्मा नियतेर्निन्द्रो वसति स्वान्तदूतवान् ॥ ३२ ॥

इस प्रकार चौबीस तत्त्वों से रचेहुए देहरूप घरमें महत्तत्त्वादि प्रकृतिभाव ( शुभाशुभर्म ) के आधीन होकर मनरूप दूतवाला होता हुआ जीवात्मा वसता है ॥ ३२ ॥

सदेही कथ्यते पापपुण्यदुःखसुखादिभिः ।

व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमैः कर्मवन्धनैः ॥ ३३ ॥

जोकि पाप, पुण्य, दुःख व सुख आदिकों से व्याप्त होकर मनके द्वारा कृत्रिम कर्मवन्धनों से वँधा हुआ है वह देही कहाजाता है ॥ ३३ ॥

इच्छादेषसुखासुखानि विषयज्ञानं प्रयतो मनः

संकल्पश्च विचारणा स्मृतिरथो बुद्धिः कलाविज्ञता ।

प्राणस्योपरियापनं गुदवशाद्यायोरधः प्रेरणं

नेत्रोन्मेषनिमेषकृत्यकरणोत्साहश्च जीवे गुणाः ॥ ३४ ॥

इच्छा ( सुख की अभिलाषा ) देष ( वैर करना ) सुख ( प्रीति ) दुःख ( अप्रीति ) विषयज्ञान ( शब्दादिज्ञान ) प्रयत ( कार्य में तत्परता यानी उद्योग ) मन ( संशयात्मक ) संकल्प ( मन का कर्म ) विचार ( ऊहापोह यानी तर्क वितर्क करके वस्तु का जान लेना ) स्मृति ( पूर्वानुभूत अर्थ का स्परण करना ) बुद्धि ( निश्चयात्मिका ) कलाविज्ञता ( शिल्पशास्त्रादि वोध ) प्राण का उपरियापन ( हृदयस्थित वायु को मुखादि ऊपर के भाग में लाना ) गुदा के वश से अधोवायु का नीचे प्रेरणा करना, नेत्रों का खोलना घेना और कार्य करने में उत्साह रखना ये मनोयुक्त जीवात्मा के गुण कहे हैं ॥ ३४ ॥

इति सृष्टिकरणम् ॥

## अथ शिवस्वरोदयाध्यायः ॥

देव्युवाच ।

देवदेव महादेव कृपां कृत्वा ममोपरि ।

सर्वसिद्धिकरं ज्ञानं कथयस्व मम प्रभो ॥ १ ॥

देवीजी बोलीं कि, अहो देवताओं के देव, महादेव, प्रभुजी ! मेरे ऊपर कृपाकर सर्वसिद्धिकारक ज्ञानको मुझसे कहिये ॥ १ ॥

कथं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं कथं वा परिवर्तते ।

कथं विलीयते देव वद् ब्रह्माण्डनिर्णयम् ॥ २ ॥

अहो देव ! यह ब्रह्माण्ड कैसे उत्पन्न होता है वा किसभांति पालन किया जाता है और किस प्रकार लीन हो जाता है ? इस ब्रह्माण्ड का निर्णय मुझ से कहो ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच ।

तत्त्वाद् ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वेन परिवर्तते ।

तत्त्वे विलीयते देवि तत्त्वाद् ब्रह्माण्डनिर्णयः ॥ ३ ॥

श्रीसदाशिवजी बोले कि, हे देवि ! यह ब्रह्माण्ड तत्त्वों से उत्पन्न होता है व तत्त्वों सेही पालन कियाजाता है और तत्त्वों मेंही लीन होजाता है इसलिये तत्त्वों से ब्रह्माण्ड का निर्णय समझना चाहिये ॥ ३ ॥

देव्युवाच ।

तत्त्वमेव परमूलं निश्चितं तत्त्ववादिभिः ।

तत्त्वस्वरूपं किं देव तत्त्वमेव प्रकाशय ॥ ४ ॥

देवीजी बोलीं कि, तत्त्ववादियों ने तत्त्वकोही परम मूल निश्चित किया है इसलिये हे देव ! तत्त्वका स्वरूप क्या है ? उसको आपही प्रकाश करें ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच ।

निरञ्जनो निराकारो ह्येको देवो महेश्वरः ।

तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्युसंभवः ॥ ५ ॥

श्रीशिवजी बोले कि निरञ्जन, निराकार, एकदेव परमेश्वर है उससे आकाश पैदाहुआ और आकाश से बायु उपजा है ॥ ५ ॥

वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वीसमुद्गवः ।

एतानि पञ्चतत्त्वानि विस्तीर्णानि च पञ्चधा ॥ ६ ॥

वायु से तेज व तेज से जल व जल से पृथ्वी उपजी है ये पांच तत्त्व एक एक प्रति पांच प्रकार से विस्तार को प्राप्त होते हैं यानी पञ्चीकरण करने से पञ्चीस तत्त्व हो जाते हैं ॥ ६ ॥

तेभ्यो ब्रह्माएडमुत्पन्नं तैरेव परिवर्तते ।

विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः ॥ ७ ॥

उनसे ब्रह्माएड उत्पन्न होता है व उन्हींसे ब्रह्माएडकी पालना होती है और उन्हीं में ही लीन होजाता है फिर सूक्ष्मरूपसे वहीं रमता है ॥ ७ ॥

पञ्चतत्त्वमये देहे पञ्चतत्त्वानि सुन्दरि ।

सूक्ष्मरूपेण वर्तन्ते ज्ञायन्ते तत्त्वयोगिभिः ॥ ८ ॥

अहो सुन्दरि ! पांच तत्त्वोंसे उपजे हुए देहमें पांचों तत्त्व सूक्ष्मरूप से वर्तते हैं उनको तत्त्वज्ञाता योगीजन जानते हैं ॥ ८ ॥

अथ स्वरं प्रवक्ष्यामि शरीरस्थस्वरोदयम् ।

हंसचारस्वरूपेण भवेज्ञानं त्रिकालजम् ॥ ९ ॥

अब जिसमें शरीरस्थ स्वरों का उदय होता है उस स्वर को कहूँगा जिसके ज्ञानद्वारा हंस चारस्वरूप से भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालों का ज्ञान होता है ॥ ९ ॥

गुह्यादुद्यतरं सारमुपकारप्रकाशनम् ।

इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञानानां मस्तके मणिः ॥ १० ॥

यह स्वरोदय ज्ञान गुह्यसे गुह्यतर होकर साररूप होता हुआ उपकारों का प्रकाशक है जो कि ज्ञानों का शिरोमणि कहाजाता है ॥ १० ॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं सुबोधं सत्यप्रत्ययम् ।

आश्र्व्य नास्तिके लोके आधारं त्वास्तिके जने ॥ ११ ॥

यह स्वरोदय ज्ञान सूक्ष्म से सूक्ष्मतर व बड़े बोधका दायक व जिसमें सत्य की प्रतीति होती है व नास्तिकलोंकों में आश्र्व्यकारक दीखता है व आस्तिकज्ञों का आधार कहाता है ॥ ११ ॥

अथ शिष्यलक्षणम्—

शान्ते शुद्धे सदाचारे गुरुभक्त्यैकमानसे ।

द्वट्टचित्ते कृतज्ञे च दैयं चैव स्वरोदयम् ॥ १२ ॥

शान्तस्वभाव व शुद्धस्वरूप, उत्तम आचरणशील व जिसका मन गुरु की भक्ति में रहता हो व चित्त दृढ़ हो व उपकारों का ज्ञाता हो उस शिष्य को स्वरोदय देना चाहिये ॥ १२ ॥

दुष्टे च दुर्जने क्रुद्धे नास्तिके गुरुतत्पगे ।  
हीनसत्त्वे दुराचारे स्वरज्ञानं न दीयते ॥ १३ ॥

जो दुष्ट, दुर्जन, क्रोधी, नास्तिक, गुरुदारगामी, अधीर और दुराचारी हो उसको स्वरका ज्ञान नहीं दियाजाता है ॥ १३ ॥

शृणु त्वं कथितं देवि देहस्थं ज्ञानमुत्तमम् ।  
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रणीयते ॥ १४ ॥

अहो देवि ! भेरे से कहे हुए देह में स्थित उत्तम ज्ञानको तुम सुनो कि जिसके विज्ञान-मात्र से सर्वज्ञता प्राप्त की जाती है ॥ १४ ॥

स्वरे वेदाश्र शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम् ।  
स्वरे च सर्वत्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम् ॥ १५ ॥

स्वर में चारो वेद व पट्टशास्त्र स्थित हैं व स्वर में उत्तम गान्धर्वशास्त्र रहता है व स्वर में सारा त्रैलोक्य टिका रहता है व स्वरही आत्मस्वरूप है ॥ १५ ॥

स्वरहीनश्च दैवज्ञो नाथहीनं यथा गृहम् ।  
शास्त्रहीनं यथा वक्रं शिरोहीनं च यद्धपुः ॥ १६ ॥

जैसे स्वरहीन ज्योतिर्विद्, नाथहीन घर व शास्त्रहीन वदन और स्वरहीन शरीर नहीं सोहता है ॥ १६ ॥

नाडीभेदं तथा प्राणतत्त्वभेदं तथैव च ।  
सुषुम्ना मिश्रभेदं च यो जानाति स मुक्तिं ॥ १७ ॥

जो मनुष्य नाड़ी, प्राण, तत्त्व और सुषुम्ना आदि मिश्रित तीन नाड़ियों के भेद को जानता है वह मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

साकारे वा निराकारे शुभं वायुबलात्कृते ।  
कथयन्ति शुभं केचित्स्वरज्ञानं वरानने ॥ १८ ॥

साकार या निराकार में वायु ( स्वर ) के बलसे शुभ होता है अहो वरानने ! कितेक आचार्य स्वरज्ञान को ही शुभदायक कहते हैं ॥ १८ ॥

ब्रह्मारुद्धरणदपि रुदाद्याः स्वरेणैव हि निर्मिताः ।

सृष्टिसंहारकर्ता च स्वरः साक्षान्महेश्वरः ॥ १६ ॥

ब्रह्मारुद के खण्ड व पिण्डआदि को स्वरनेही बनाया है और सृष्टि व संहार का करने वाला साक्षात् महेश्वररूप स्वरही है ॥ १६ ॥

स्वरज्ञानात्परं गुह्यं स्वरज्ञानात्परं धनम् ।

स्वरज्ञानात्परं ज्ञानं नवा दृष्टं नवा श्रुतम् ॥ २० ॥

स्वरके ज्ञान से परे गुह्य, स्वरके ज्ञानसे परे धन और स्वरके ज्ञानसे परे ज्ञान न देखा गया और न सुना गया है ॥ २० ॥

शत्रुं हन्यात्स्वरबले तथा मित्रसमागमः ।

लक्ष्मीप्राप्तिः स्वरबले कीर्तिः स्वरबले मुखम् ॥ २१ ॥

जो स्वरका बल होवे तो वैरी को मारडाले तथा मित्रों से मिलाप करे व स्वरबल के होने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और जब स्वरका बल होता है तभी कीर्ति और मुख मिलता है ॥ २१ ॥

कन्याप्राप्तिः स्वरबले स्वरतो राजदर्शनम् ।

स्वरेण देवतासिद्धिः स्वरेण क्षितिपो वशः ॥ २२ ॥

स्वरबल के होने पर कन्या की प्राप्ति ( विवाह ) होती है, स्वरसेही राजा का दर्शन होता है, स्वरसेही देवता की सिद्धि मिलती है और स्वरसेही राजा वश होजाता है ॥ २२ ॥

स्वरेण गम्यते देशो भोजयं स्वरबले तथा ।

लघुशङ्कां स्वरबले मलं चैव निवारयेत् ॥ २३ ॥

स्वरकेही बलसे देशको जाता है व स्वरबलके होने पर भोजन मिलता है और स्वरबलके होतेही पेशाब और मलका त्याग करे ॥ २३ ॥

सर्वशास्त्रपुराणादिस्मृतिवेदाङ्गपूर्वकम् ।

स्वरज्ञानात्परं तत्त्वं नास्ति किञ्चिद्धरानने ॥ २४ ॥

अहो वरानने ! समस्त शास्त्र, पुराण आदि, स्मृति और वेदाङ्गपूर्वक स्वरज्ञान से परे कुछ तत्त्व नहीं है ॥ २४ ॥

नामरूपादिकः सर्वो मिथ्या सर्वेषु विभ्रमः ।

<sup>१</sup> कीर्ति पृथ्वीं पाति रक्षतीति क्षितिपः पृथ्वीनाथः ॥

अज्ञानमोहिता मूढा यावत्तत्वं न विद्यते ॥ २५ ॥

तभीतक सर्वोंमें नाम रूपादिक सर्व विभ्रम मिथ्या है व तभीतक मूढ़लोग अज्ञान से मोहित रहते हैं जबतक तत्त्वका ज्ञान नहीं होता है ॥ २५ ॥

इदं स्वरोदयं शास्त्रं सर्वशास्त्रोत्तमम् ।

आत्मघटप्रकाशार्थं प्रदीपकलिकोपमम् ॥ २६ ॥

यह स्वरोदय शास्त्र समस्त उत्तम शास्त्रों में उत्तम है और आत्मारूपी घट के प्रकाशार्थ दीपक की कलिकाके समान है ॥ २६ ॥

यस्मै कस्मै परस्मै वा न प्रोक्तं प्रश्नहेतवे ।

तस्मादेतत्स्वयं ज्ञेयमात्मनो वात्मनात्मनि ॥ २७ ॥

यह स्वरोदय प्रश्नके लिये जिस किसी से या पर से नहीं कहा गया है किन्तु अपने लिये अपनीही देह में अपनी बुद्धि से स्वयं जानना चाहिये ॥ २७ ॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो ग्रहदेवता ।

न च विष्टिर्यतीपातो वैधृत्याद्यास्तथैव च ॥ २८ ॥

इस स्वरोदय में तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह, देवता, भद्रा, व्यतीपात और वैधृति आदिकों का दोष नहीं विचारा जाता है ॥ २८ ॥

कुयोगो नास्तिको देवि भविता वा कदाचन ।

प्राप्ते स्वरबले शुद्धे सर्वमेव शुभं फलम् ॥ २९ ॥

अहो देवि ! इसमें कोई कुयोग नहीं है और न कभी होगा जब स्वर का शुद्ध बल आप होता है तब सारा फल शुभही होजाता है ॥ २९ ॥

देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तरात् ।

ज्ञातव्याश्च बुधैर्नित्यं स्वदेहज्ञानहेतवः ॥ ३० ॥

देह के मध्य में बड़े विस्तार से अनेक रूपवाली नाड़ियां स्थित हैं उन सर्वों को अपने देह के ज्ञानार्थ परिणितों को सदैव जानना चाहिये ॥ ३० ॥

नाभिस्थानगकन्दोर्ध्वमङ्गुरादेव निर्गताः ।

दिसमतिसहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥ ३१ ॥

नाभिस्थानगामी कन्द के ऊपर अंकुर से ही निकली हुई वहचर हजार नाड़ियां देह के मध्य में स्थित हैं ॥ ३१ ॥

नाडिस्था कुण्डली शक्रिर्भुजङ्गाकारशायिनी ।

ततो दशोर्ध्वंगा नाड्यो दशैवाधःप्रतिष्ठिताः ॥ ३२ ॥

नाड़ी में टिकी व सर्पाकार के समान सोती हुई कुण्डलिनी शक्रि है उससे ऊपर को गई हुई दश नाडियाँ हैं और दशही निचले भाग में प्रतिष्ठित हैं ॥ ३२ ॥

द्वे द्वे तिर्यग्गते नाड्यौ चतुर्विंशतिसंख्यया ।

प्रधाना दशनाड्यस्तु दश वायुप्रवाहकाः ॥ ३३ ॥

दो दो नाडियाँ तिरच्छी गई हैं ये चौबीस नाडियाँ हैं उनमें दशनाडियाँ प्रधान हैं और दश नाडियाँ वायुको बहाती हैं ॥ ३३ ॥

तिर्यगूर्ध्वास्तथा नाड्यो वायुदेहसमन्विताः ।

चक्रवत्संस्थिता देहे सर्वाः प्राणसमाश्रिताः ॥ ३४ ॥

तिरच्छी—ऊपर और नीचे स्थित और वायु व देह के आश्रित सारी नाडियाँ देह में टिकी हुई प्राण के अधीन रहती हैं ॥ ३४ ॥

तासां मध्ये दशश्रेष्ठा दशानां तिस्स उत्तमाः ।

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयिका ॥ ३५ ॥

उन सब नाडियों मेंसे दश नाडियाँ प्रधान हैं और उन दशों में से इडा, पिङ्गला और तीसरी सुषुम्ना ये तीनों उत्तम कहलाती हैं ॥ ३५ ॥

गान्धारी हस्तिजिह्वा पूषा चैव यशस्विनी ।

अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशभी तथा ॥ ३६ ॥

गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और दशर्वीं शङ्खिनी जानना चाहिये ॥ ३६ ॥

इडा वामे स्थिता भागे पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।

सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि ॥ ३७ ॥

वामभाग में इडानाड़ी स्थित है और दक्षिणभाग में पिङ्गला कही है तथा मध्यदेश में सुषुम्ना और वायें नेत्रमें गान्धारी जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ।

यशस्विनी वामकर्णे आनने चाप्यलम्बुषा ॥ ३८ ॥

दाहिने नेत्रमें हस्तिजिह्वा व दाहिने कान में पूषा व वायें कानमें यशस्विनी और मुखमें अलम्बुषा रहती है ॥ ३८ ॥

कुहूश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने तु शङ्खिनी ।

एवं दारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाडिकाः ॥ ३६ ॥

लिङ्गदेशमें कुहू और गुदास्थान में शङ्खिनी जानना चाहिये इस प्रकार द्वारों का सहारा लेकर दश नाडिकाँयं टिकी रहती हैं ॥ ३६ ॥

इडा पिङ्गला सुषुम्ना च प्राणमार्गे समाश्रिताः ।

एता हि दश नाड्यस्तु देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥ ४० ॥

इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना ये तीनों प्राणमार्ग में आश्रित हैं ये दश नाडियाँ देहके मध्यमें स्थित हैं ॥ ४० ॥

नामानि नाडिकानान्तु वातानां तु वदाम्यहम् ।

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥ ४१ ॥

नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ।

हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ॥ ४२ ॥

वातलनाडियों के नामों को मैं कहताहूँ कि प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये दश हैं उनमें से प्राण हमेशा हृदयमें बसता है और गुदमण्डल में अपान रहता है ॥ ४१ । ४२ ॥

समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः ।

व्यानो व्यापी शरीरेषु प्रधाना दश वायवः ॥ ४३ ॥

नाभिमण्डल में समान, कण्ठमध्यगामी उदान और सर्वशरीरव्यापी व्यान कहाता है ये दशवायु प्रधान हैं ॥ ४३ ॥

प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः ।

तेषामपि च पञ्चानां स्थानानि च वदाम्यहम् ॥ ४४ ॥

प्राणआदि पांच विख्यात होतुके हैं अब नागादि जो पांच वायु हैं उन पांचों के स्थानों कोभी चतलाताहूँ ॥ ४४ ॥

उद्धारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ।

कृकलः क्षुतकृज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥ ४५ ॥

उगलने में नाग, नेत्रों के उघाड़ने में कूर्म, छींकने में कृकल और जँभाई लेने में देवदत्त कहलाता है ॥ ४५ ॥

न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः ।

एते नाडीषु सर्वासु भ्रमन्ते जीवरूपिणः ॥ ४६ ॥

सर्वव्यापी धनञ्जय पवन मृतक शरीर को भी नहीं त्यागता है ये दश पवन जीवरूपी  
प्रोक्त कर सारी नाड़ियों में भ्रमते हैं ॥ ४६ ॥

प्रकटं प्राणसंचारं लक्षयेहैहमध्यतः ।

इडापिङ्गलासुषुम्नाभिनाडीभिस्तसृभिर्बुधः ॥ ४७ ॥

देहके बीचमें जो प्रकट प्राणोंका संचार होता है उसको इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना इन  
नीं नाड़ियों सेही परिदृष्ट को लखना चाहिये ॥ ४७ ॥

इडा वामे च विज्ञेया पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।

इडानाडी स्थिता वामा ततो व्यस्ता च पिङ्गला ॥ ४८ ॥

वामभागमें इडा जानना चाहिये और दक्षिणभागमें पिङ्गला कहलाती है, इडा नाड़ी  
वामरूप से स्थित है और पिङ्गला व्यस्तरूप से रहती है ॥ ४८ ॥

इडायां तु स्थितश्चन्द्रः पिङ्गलायां च भास्करः ।

सुषुम्ना शम्भुरूपेण शम्भुर्हस्त्वरूपतः ॥ ४९ ॥

इडानाडी में चन्द्रमा स्थित है व पिङ्गला नाड़ी में सूर्य टिकाहै और सुषुम्ना शम्भुरूप  
से रहती है और शम्भु हंसरूपसे स्थित है ॥ ४९ ॥

हकारो निर्गमे प्रोक्तः सकारेण प्रवेशनम् ।

हकारः शिवरूपेण सकारः शक्तिरुच्यते ॥ ५० ॥

श्वास के निकलने में हकार कहा है और सकार से श्वासका प्रवेश होता है और  
एकार शिवरूप से रहता है व सकार शक्तिरुप कहाती है ॥ ५० ॥

शक्तिरुपः स्थितश्चन्द्रो वामनाडीप्रवाहकः ।

दक्षनाडीप्रवाहश्च शम्भुरूपो दिवाकरः ॥ ५१ ॥

वामनाडीका चलानेवाला चन्द्रमा शक्तिरुप से स्थित है और दक्षिण नाडीका बहाने  
वाला सूर्य शम्भुरूप से टिकारहता है ॥ ५१ ॥

श्वासे सकारसंस्थे तु यदानं दीयते बुधैः ।

तदानं जीवलोकेस्मिन्कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ५२ ॥

जब श्वास सकार में टिकता है तब परिदृष्ट करके जो दान दियाजाता है वह दान  
इस जीवलोक में करोड़ का करोड़गुण फलदायक होता है ॥ ५२ ॥

अनेन लक्षयेद्योगी चैकचित्तः समाहितः ।

सर्वमेव विजानीयान्मार्गे वै चन्द्रसूर्ययोः ॥ ५३ ॥

सावधान व एकाग्रचित्त होता हुआ योगी इसी मार्ग से देखे और चन्द्रमा व सूर्यकी मार्गमें ही सबको जानलेवे ॥ ५३ ॥

ध्यायेत्तत्त्वं स्थिरे जीवे अस्थिरे न कदाचन ।

इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभोऽजयस्तथा ॥ ५४ ॥

जब जीव स्थिर होजावे तो मनुष्य तत्त्वका ध्यान करे और जब स्थिर न होवे तो कदापि ध्यान न करे उसके इष्टकी सिद्धि होती है और महालाभ तथा जय होता है ॥ ५४ ॥

चन्द्रसूर्यसमभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नराः ।

अतीतानागतज्ञानं तेषां हस्तगतं भवेत् ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य सदैव चन्द्र व सूर्यके स्वरोंका भलीभांति अध्यास करते हैं उनको भूत-भविष्य का ज्ञान प्रत्यक्ष भासने लगता है ॥ ५५ ॥

वामे चामृतरूपा स्याज्जगदाप्यायनं परम् ।

दक्षिणे चरभागेन जगदुत्पादयेत्सदा ॥ ५६ ॥

वामभाग में इडानाडी अमृतरूप होकर जगत् को परम पोषण करती है और दक्षिणभाग में चरभाग से पिङ्गलानाडी सदैव जगत् को उपजाती है ॥ ५६ ॥

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वत्र कर्मसु ।

सर्वत्र शुभकार्येषु वामा भवति सिद्धिदा ॥ ५७ ॥

मध्यमा ( सुषुम्ना ) नाडी कठोर होकर सबकामों में निन्दित कहजाती है और वामा नाडी सब शुभकार्योंमें सिद्धिदायक होती है ॥ ५७ ॥

 निर्गमे तु शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा ।

चन्द्रः समस्सुविज्ञेयो रविस्तु विषमः सदा ॥ ५८ ॥

गमन के समय वामा नाडी और प्रवेश के समय दक्षिण ( पिङ्गला ) नाडी शुभदायक कहाती है और चन्द्रमा को सम व सूर्यको विषम सदैव जानना चाहिये ॥ ५८ ॥

चन्द्रः स्त्री पुरुषः सूर्यश्चन्द्रो गौरोसितो रविः ।

चन्द्रनाडीप्रवाहेण सौम्यकार्याणि कारयेत् ॥ ५९ ॥

चन्द्रमा स्त्रीसंज्ञक और सूर्य पुरुषसंज्ञक कहजाता है, चन्द्रमा गौरवर्ण और सूर्य

यामवर्ण कहलाते हैं और जब चन्द्रमा की नाड़ी का प्रवाह होता हो उस समय सौभ्य गायों को करावे ॥ ५६ ॥

सूर्यनाडीप्रवाहेण रौद्रकर्मणि कारयेत् ।

सुषुम्नायाः प्रवाहेण भुक्षिमुक्षिलानि च ॥ ६० ॥

जब सूर्यकी नाड़ीका प्रवाह होता हो उससमय रौद्रकर्मों ( उग्रकामों ) को करे और जब सुषुम्ना नाड़ीका स्वर बहता हो तो भुक्षि-मुक्षिदायक कर्मों को करना चाहिये ॥ ६० ॥

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करो हि सितेतरे ।

प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि कृतोदयौ ॥ ६१ ॥

शुक्रपक्ष में पहले चन्द्रमा का स्वर और कृष्णपक्ष में पहले सूर्यका स्वर चलता है  
और परेवासे लेकर तीन दिन चन्द्रमा व सूर्यका स्वर बलवान् होता है ॥ ६१ ॥

सार्धद्विघटिके ज्ञेयः शुक्ले कृष्णे शशीरविः ।

वहत्येकदिनेनैव यथा पष्टिघटीःक्रमात् ॥ ६२ ॥

द्वाईदाई २३ घटी शुक्रपक्ष में चन्द्रमा और द्वाईदाई २३ घटी कृष्णपक्ष में सूर्य एकदिनमें गठयटी पर्यन्त बहते हैं अर्थात् दोनों स्वरों की क्रमसे चौबीस २ आवृत्तियां होती हैं ॥ ६२ ॥

वहेयुतद्विघटीमध्ये पञ्च तत्त्वानि निर्दिशेत् ।

प्रतिपत्तो दिनान्याहुर्विपरीते विवर्जयेत् ॥ ६३ ॥

उन प्रत्येक द्वाई २३ घटियों में पांचों तत्त्वों को कहे और प्रतिपदा से लेकर जो चन्द्रमा व सूर्य के दिन कहे हैं उनसे विपरीत होयं यानी चन्द्रमा के स्वर में सूर्यका और सूर्यके स्वर में चन्द्रमा का स्वर चले तो उसको वर्ज देना चाहिये क्योंकि वह अशुभ-दायक कहा जाता है ॥ ६३ ॥

शुक्रपक्षे भवेद्रामा कृष्णपक्षे च दक्षिणा ।

जानीयात्प्रतिपत्पूर्वा योगी तद्यतमानसः ॥ ६४ ॥

शुक्रपक्ष में परेवा से लेकर पहले वामा नाड़ी और कृष्णपक्ष में दक्षिणा नाड़ी को एकाग्रमनवाला योगी जाने ॥ ६४ ॥

शशाङ्कं वारयेद्रात्रौ दिवावारयभास्करम् ।

इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः ॥ ६५ ॥

रात्रिके समय चन्द्रस्वर को और दिनमें सूर्यस्वरको वर्जिदेवे इस भाँति सदैव अभ्यास में लगा हुआ वह निस्सन्देह योगी कहलाता है ॥ ६५ ॥

सूर्येण बध्यते सूर्यश्चन्दश्चन्द्रेण बध्यते ।

यो जानाति क्रियामेतां त्रैलोक्यं वशगं क्षणात् ॥ ६६ ॥

सूर्यके स्वर से सूर्य और चन्द्रमा के स्वर से चन्द्रमा बन्द किया जाता है इस क्रिया को जो मनुष्य जानता है उसके वश में त्रैलोक्य क्षणमात्र में आ जाता है ॥ ६६ ॥

उदयं चन्द्रमार्गेण सूर्येणास्तमनं यदि ।

तदा ते गुणसंघाता विपरीतं विवर्जयेत् ॥ ६७ ॥

यदि चन्द्रमा के स्वरमें सूर्यका उदय हो और सूर्यके स्वर में अस्त हो तो उस समय अनेक गुणों के समुदाय पैदा हो जाते हैं इससे उलटा हो तो उसको वर्जिदेना चाहिये ॥ ६७ ॥

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां वासरे वामनाडिका ।

सिद्धिदा सर्वकार्येषु शुक्रपक्षे विशेषतः ॥ ६८ ॥

बृहस्पति, शुक्र, बुध और सोम इन वारों में वामा नाड़ी सवकार्यों में सिद्धिदायक होती है और शुक्रपक्ष में विशेषता से फलदायक होती है ॥ ६८ ॥

अर्काङ्गारकसौरीणां वासरे दक्षनाडिका ।

स्मर्तव्या चरकार्येषु कृष्णपक्षे विशेषतः ॥ ६९ ॥

सूर्य, मङ्गल, शनैश्चर इन वारों में दक्षिण नाड़ी चर कार्यों में स्मरण करना चाहिये और कृष्णपक्ष में विशेषता से स्मरणीय है ॥ ६९ ॥

प्रथमं वहते वायुर्द्वितीयं च तथानलः ।

तृतीयं वहते भूमिश्चतुर्थं वारुणी वहेत् ॥ ७० ॥

पहले वायुतत्त्व वहता है दूसरी वार अग्नितत्त्व व तीसरीवार भूमितत्त्व व चौथीवार

जलतत्त्व और पांचवींवार आकाशतत्त्व वहता है ॥ ७० ॥

सार्धद्विघटिके पञ्च क्रमेणोदयन्ति च ।

क्रमादेकैकनाड्यां च तत्त्वानां पृथगुद्धवः ॥ ७१ ॥

दाईघड़ी के समय में पूर्वोक्त पांचों तत्त्व क्रम से उदय करते हैं और एक २ नाड़ी में भी क्रम से पृथक् पांचों तत्त्वों का उदय होता है ॥ ७१ ॥

अहोरात्रस्य मध्ये तु ज्ञेया द्वादशसंक्रमाः ।

वृषकर्कटकन्यालिमृगमीना निशाकरे ॥ ७२ ॥

दिन और रात्रिके मध्य में चन्द्रमा व सूर्य की बारह संक्रान्तियां कहलाती हैं उनमें वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये चन्द्रमा की संक्रान्तियां होती हैं ॥ ७२ ॥

मेषसिंहौ च कुम्भश्च तुला च मिथुनं धनम् ।

उदये दक्षिणे ज्येयः शुभाशुभविनिर्णयः ॥ ७३ ॥

मेष, सिंह, कुम्भ, तुला, मिथुन और धन ये सूर्य की संक्रान्तियां जाननी चाहिये इस भाँति उदय व दक्षिण में शुभाशुभका निर्णय जानना चाहिये ॥ ७३ ॥

तिष्ठेत्पूर्वोत्तरे चन्द्रो भानुः पश्चिमदक्षिणे ।

दक्षनाड्याः प्रसारे तु न गच्छेद्याम्यपश्चिमे ॥ ७४ ॥

पूर्व व उत्तर में चन्द्रमा टिकता है और पश्चिम व दक्षिण में सूर्य रहता है और दक्षिण नाड़ी के प्रवाह ( स्वर ) में दक्षिण व पश्चिम में न जावे ॥ ७४ ॥

वामाचारप्रवाहे तु न गच्छेत्पूर्वं उत्तरे ।

परिपन्थिभयं तस्य गतोऽसौ न निवर्तते ॥ ७५ ॥

वामानाड़ी के प्रचार में पूर्व और उत्तर में न जावे यदि जावे तो उसको वैरियों से मध्य होती है और गया हुआ वह फिर लौटकर नहीं आता है ॥ ७५ ॥

तत्र तस्मान्ब गन्तव्यं बुधैः सर्वहितैषिभिः ।

तदा तत्र तु संजाते मृत्युरेव न संशयः ॥ ७६ ॥

इसलिये वहां पर सर्वहितैषी पण्डितों को नहीं जाना चाहिये और यदि उस समय वहां पर जावें तो मौत के होनेमें संदेह नहीं होती है ॥ ७६ ॥

शुक्लपक्षे द्वितीयायामके वहति चन्द्रमाः ।

दृश्यते लाभदः पुंसां सौम्ये सौख्यं प्रजायते ॥ ७७ ॥

यदि शुक्लपक्षकी द्वितीया के दिवस सूर्यके प्रवाह में चन्द्रमा वहता हो तो पुरुषों को लाभदायक देखा जाता है और यदि सौम्यकार्य किया जावे तो सौख्य उपजाता है ॥ ७७ ॥

सूर्योदये यदा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रोदये भवेत् ।

सिध्यन्ति सर्वकार्याणि दिवरात्रिगतान्यपि ॥ ७८ ॥

जिस समय सूर्य के उदय में सूर्य और चन्द्रमा के उदय में चन्द्रमा का ही स्वर वहता हो उस समय दिन व राति में किये हुए सब काम सिद्ध हो जाते हैं ॥ ७८ ॥

चन्द्रकाले यदा सूर्यः सूर्यश्चन्द्रोदये भवेत् ।

उद्देगः कलहो हानिः शुभं सर्वं निवारयेत् ॥ ७९ ॥

<sup>१</sup> “ उद्देग उद्भवमे ” ( इत्यमरः ) ॥

जबकि चन्द्रमा के समय में सूर्य और सूर्य के समय में चन्द्रमा होय तब चिन्ता, लड़ाई और हानि होती है और सारे शुभकारों की निटृत्ति हो जाती है ॥ ७६ ॥

**सूर्यस्य वाहे प्रवदनित विज्ञा ज्ञानं ह्यगम्यस्य तु निश्चयेन ।**

**श्वासेन युक्तस्य तु शीतरश्मेः प्रवाहकाले फलमन्यथा स्यात् ॥ ८० ॥**

सूर्य के प्रवाह में विज्ञलोग अगम्य वस्तुका ज्ञान निश्चयकर बतलाने हैं और श्वासयुक्त चन्द्रमा के प्रवाहकाल में फल अन्यथा हो जाता है ॥ ८० ॥

अथ विपरीतलक्षणम्—

**यदा प्रत्यूषकालेन विपरीतोदयो भवेत् ।**

**चन्द्रस्थाने वहत्यकों रविस्थाने च चन्द्रमाः ॥ ८१ ॥**

जब प्रभातकाल से ही विपरीतस्वरों का उदय होता है यानी चन्द्रमा के स्थानमें सूर्य और सूर्य के स्थान में चन्द्रमा बहता है ॥ ८१ ॥

**प्रथमे मनउद्गेगं धनहानिर्दीतीयके ।**

**तृतीये गमनं प्रोक्तमिष्टनाशं चतुर्थके ॥ ८२ ॥**

प्रथम में मनका उद्गेग ( घवराहट ) होती है दूसरे में धन की हानि होती है तीसरे में गमन कहा है और चौथे में इष्टका विनाश हो जाता है ॥ ८२ ॥

**पञ्चमे राज्यविधंसं षष्ठे सर्वार्थनाशनम् ।**

**सप्तमे व्याधिदुःखानि अष्टमे मृत्युमादिशेत् ॥ ८३ ॥**

पांचवें में राज्य का विधंस, छठे में समस्त अर्थों का नाश, सातवें में व्याधि और दुःख होते हैं और आठवें में मौत को कहना चाहिये ॥ ८३ ॥

**कालत्रये दिनान्यष्टौ विपरीतं यदा वहेत् ।**

**तदा दुष्टफलं प्रोक्तं किञ्चिन्न्यूनं तु शोभनम् ॥ ८४ ॥**

प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल इन तीनों कालों में यदि आठ दिन पर्यन्त वरावर विपरीत स्वर बहता रहे तो अशुभ फल कहा है और यदि कुछेक कम विपरीत चले तो शुभफल जानना चाहिये ॥ ८४ ॥

**प्रातर्मध्याह्नयोश्चन्द्रः सायंकाले दिवाकरः ।**

**तदा नित्यं जयो लाभो विपरीतं विवर्जयेत् ॥ ८५ ॥**

जिसदिन प्रातःकाल व मध्याह्नसमय चन्द्रमाका स्वर और सायंकाल में सूर्यका स्वर चलना हो तो नित्यही जय व लाभ होता है और यदि विपरीत चले तो वर्जिदेवे ॥ ८५ ॥

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र संक्रमते शिवः ।

कृत्वा तत्पादमादौ च यात्रा भवति सिद्धिदा ॥ ८६ ॥

यात्रा के समय बायां या दायां जो स्वर चलता हो उसी पैर को पहले आगे धरकर यात्रा करे तो वह यात्रा सिद्धिदायक होती है ॥ ८६ ॥

चन्द्रः समपदः कार्यो रविस्तु विषमः मदा ।

पूर्णपादं पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा ॥ ८७ ॥

यदि चन्द्रमा का स्वर चलता हो तो समपद २-४-६ आदि आगे रखना चाहिये और यदि सूर्यका स्वर बहता हो तो विषमपद १-३-५ आदि सदैव आगे रखना इस मांति पूर्णपादको आगे धरकर यात्रा करे तो सिद्धिदायक होती है ॥ ८७ ॥

यत्राङ्गे वहते वायुस्तदङ्गकरसंतलात् ।

सुसोत्थितो मुखं स्पृष्टा लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ८८ ॥

जिस अङ्गमें वायु बहता हो उसी अङ्गके करतल से शयन से उठाहुआ मनुष्य मुखका पर्श करे तो वाञ्छित फलको पाताहै ॥ ८८ ॥

परदत्ते तथा ग्राह्ये गृहान्निर्गमनेऽपि च ।

यदङ्गे वहते नाडी ग्राह्यं तेन कराङ्गध्रिणा ॥ ८९ ॥

दूसरे को दानदेने या ग्रहण करने में या घरसे बाहर जाने में जिस अङ्गकी नाडी लती हो उसी हाथ या पैर से वस्तु को पकड़ लेना चाहिये ॥ ८९ ॥

न हानिः कलहो नैव करटकैर्नापि भिद्यते ।

निवर्तते सुखी चैव सर्वोपद्रववर्जितः ॥ ९० ॥

तो न हानि हो न कलह हो और न शत्रुओं से भेदन कियाजावे और वह सुखी होकर उपद्रवों से रहित होताहुआ निवृत्त होजाता है ॥ ९० ॥

शुरुबन्धुनुपामात्येष्वन्येषु शुभदायिनी ।

पूर्णाङ्गे खलु कर्तव्या कार्यसिद्धिर्मनःस्थिता ॥ ९१ ॥

गुरु, वान्धव, राजा, मन्त्री व अन्य महन्तलोगों से यदि शुभदायक कार्यकी सिद्धि चाहता हो तो पूर्णहाथ से करनी चाहिये यानी हाथमें कोई फल आदि वस्तु को लेकर पूर्णोंके लोगों के पास जावे तो मनवाञ्छित सिद्धि को पाताहै ॥ ९१ ॥

अग्निचौराधर्मधर्मा अन्येषां वादिनिग्रहः ।

कर्तव्याः खलु शिक्षायां जयताभसुखार्थिभिः ॥ ९२ ॥

यदि अग्निदाह-चौरकर्म-अधर्मकार्य-धर्मकार्य तथा अन्य व सुखके अभिलाषी लोगों के वादी को दण्ड देना चाहे तो खाली हाथ सेही जय, लाभ, जनों को कार्यसिद्ध करनी चाहिये ॥ ६२ ॥

दूरदेशे विधातव्यं गमनं तु हिमद्युतौ ।

अभ्यर्णदेशे दीपे तु तरणाविति केचन ॥ ६३ ॥

कितेक आचार्य ऐसा कहते हैं कि यदि दूरदेश में गमन करना चाहे तो चन्द्रमा के स्वर में चलाजावे और यदि समीप देशमें जानाचाहे तो सूर्य के स्वर में जावे ॥ ६३ ॥

यत्किञ्चित्पूर्वमुदिष्टं लाभादिसमरागमः ।

तत्सर्वं पूर्णनाडीषु जायते निर्विकल्पकम् ॥ ६४ ॥

जो कुछ लाभादि व युद्धागम पहले कहागया है वह सब पूर्णनाड़ियों मेंही निस्सनदेह होता है ॥ ६४ ॥

शून्यनाड्या विपर्यस्तं यत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।

जायते नान्यथा चैव यथा सर्वज्ञभाषितम् ॥ ६५ ॥

पहले कहाहुआ शून्यनाडी का जो उलटा फल है वह अन्य भाँति का नहीं होता है जैसेकि शिवजी ने कहाहै ॥ ६५ ॥

व्यवहारे स्वलोच्चाटे देषि विद्यादिवश्चके ।

कुपितस्वामिचौराद्ये पूर्णस्थाः स्युर्भयंकराः ॥ ६६ ॥

व्यवहार, खलोंका उच्चाटन, वैरी, विद्याआदि से ठगना, स्वामी का कोप और चौरआदि कूर कामों में पूर्णस्वर भयकारक होते हैं ॥ ६६ ॥

दूराध्वनि शुभशचन्द्रो निर्विघ्नोभीष्टसिद्धिदः ।

प्रवेशकार्यहेतौ च सूर्यनाडी प्रशस्तते ॥ ६७ ॥

जो मनुष्य दूरमार्ग में जाना चाहे तो उसको चन्द्रमा का स्वर शुभदायक होताहुआ निर्विघ्नता से अभीष्ट सिद्धिका देनेवाला होता है और प्रवेश कार्य में सूर्य की नाड़ी प्रशस्त होती है ॥ ६७ ॥

अयोग्ये योग्यता नाड्या योग्यस्थाने प्ययोग्यता ।

कार्यानुबन्धनो जीवो यथा रुदस्तथा चरेत् ॥ ६८ ॥

अयोग्य कार्य में नाड़ी की योग्यता और योग्यकार्य में अयोग्यता को कार्य का अनुबन्धी

१ “सर्वः कूरः खलः कूरः सर्पात्कृतरः खलः । सर्वं एकाकिनं हन्ति खलः सर्वविनाशकृत्”

जीव प्राप्त होता है इसलिये जैसा स्वर वहता हो वैसाही मनुष्य आचरण करे ॥ ६८ ॥  
 चन्द्राचारे विषहते सूर्यो बलिवशं नयेत् ।  
 सुषुम्नायां भवेन्मोक्ष एको देवस्थिधास्थितः ॥ ६९ ॥

चन्द्रमा का स्वर चले तो मनुष्य किसीके किये अपराध को भी सहलेता है और यदि सूर्य का स्वर चलताहो तो बलवान् को भी वश में लासक्ता है और यदि सुषुम्ना नाड़ी का स्वरहो तो मोक्ष होता है इसमांति एकदेव (स्वर) तीन प्रकार से स्थित हता है ॥ ६९ ॥

शुभान्यशुभकार्याणि क्रियन्ते ऽहर्निशं यदा ।  
 तदा कार्यानुरोधेन कार्यं नाडीप्रचालनम् ॥ १०० ॥

जिस समय दिनरात शुभ व अशुभकार्य किये जाते हैं उससमय कार्य के अनुसार नाड़ी गो चलाना चाहिये ॥ १०० ॥

अथ इडा ॥



स्थिरकर्मण्यलंकारे दूराध्वगमने तथा ।  
 आश्रमे धर्मप्राप्तादे वस्तुनां संग्रहेऽपि च ॥ १ ॥

स्थिरकार्य, अलङ्कार (गहना), दूरमार्ग में चलना, आश्रम, धर्मनिंद्र और वस्तुओं संचय करने में भी ॥ १ ॥

वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठा स्तम्भदेवयोः ।  
 यात्रा दाने विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे ॥ २ ॥

वावड़ी, कुँबां, तालाब, देवता व स्तम्भ की प्रतिष्ठा, यात्रा, दान, विवाह, वस्त्र, अल-हार और भूषण में ॥ २ ॥

शान्तिके पौष्टिके चैव दिव्यौषधिरसायने ।  
 स्वस्वामिदर्शने मित्रे वाणिज्ये कणसंग्रहे ॥ ३ ॥

शान्तिकर्म, पौष्टिक कार्य, दिव्यौषधि, रसायन, अपने स्वामी का दर्शन, मित्र, व्यापार और धान्यसंग्रह में ॥ ३ ॥

गृहप्रवेशे सेवायां कृष्णौ च बीजवापने ।  
 शुभकर्मणि सन्धौ च निर्गमे च शुभः शशी ॥ ४ ॥

गृहप्रवेश, सेवा, खेती, बीजका बोना, शुभकर्म, सन्धि और गमन इनमें चन्द्रमा का सर शुभदायक होता है ॥ ४ ॥

विद्यारम्भादिकार्येषु वान्धवानां च दर्शने ।  
जन्ममोक्षे च धर्मे च दीक्षायां मन्त्रसाधने ॥ ५ ॥

विद्यारम्भ आदि कार्य, वान्धवों का दर्शन, जन्म, मोक्ष, धर्मकृत्य, यज्ञादिकों की दीक्षा और मन्त्रसिद्धि में इडानाड़ी शुभदायक होती है ॥ ५ ॥

कालविज्ञानसूत्रे तु चतुष्पादगृहागमे ।  
कालव्याधिचिकित्सायां स्वामिसम्बोधने तथा ॥ ६ ॥

काल व विज्ञान की सूचना, पशुओं का धर्म आना, काल व व्याधि की चिकित्सा और स्वामीका बुलाना इनमें चन्द्रमा का स्वर शुभदायक होता है ॥ ६ ॥

गजाश्वारोहणे धन्विगजाश्वानां च बन्धने ।  
परोपकरणे चैव निधीनां स्थापने तथा ॥ ७ ॥

हाथी व घोड़े की सवारी, धनुषका धारना, हाथी व घोड़े का बांधना, परोपकार करना और खजाना का स्थापन करना इनमें इडा शुभदायक होती है ॥ ७ ॥

गीतवाद्यादिनृत्यादौ नृत्यशास्त्रविचारणे ।  
पुरुषामनिवेशे च तिलकक्षेत्रधारणे ॥ ८ ॥

गाना, बजाना आदि, नाचना आदि, नृत्यशास्त्र का विचार, पुरुष व ग्राम का प्रवेश, तिलक और सेत्र के धारने में चन्द्रनाड़ी का स्वर शुभदायक होता है ॥ ८ ॥

आर्तिशोकविषादे च ज्वरिते मूर्च्छितेषि वा ।  
स्वजनस्वामिसम्बन्धे अन्नादेर्दारुसंग्रहे ॥ ९ ॥

रोग, शोक, विषाद ( उदासी ) ज्वर, मूर्च्छा, अपने जन व स्वामी के सम्बन्ध में और अन्नआदि तथा काष्ठसंचय में भी चन्द्रनाड़ी शुभदायक होती है ॥ ९ ॥

स्त्रीणां दन्तादिभूषायां वृष्टेरागमने तथा ।  
गुरुपूजाविषादीनां चालने च वरानने ॥ १० ॥

स्त्रियों के दांत आदिका भूषण, वर्षा का आगमन, गुरुपूजा और विषआदिकों के चलाने यानी निकालने में है वरानने ! चन्द्रनाड़ी शुभदायक कहलाती है ॥ १० ॥

इडायां सिद्धिदं प्रोक्तं योगाभ्यासादिकर्म च ।  
तत्रापि वर्जयेद्यायुं तेज आकाशमेव च ॥ ११ ॥

चन्द्रनाड़ी में योगाभ्यास आदि कर्म सिद्धिदायक कहाहै वहांभी जब वायु-अग्नि और आकाश तत्त्व वहतेहों तब योगाभ्यासादिकों को वर्जिदेवे ॥ ११ ॥

सर्वकार्याणि सिध्यन्ति दिवारात्रिगतान्यपि ।

सर्वेषु शुभकार्येषु चन्द्रचारः प्रशस्यते ॥ १२ ॥

दिन व रात्रि में कियेहुए सबकाम चन्द्रनाड़ी में सिद्ध होते हैं और सारे शुभकामों में चन्द्रमा का चार प्रशस्त होता है यानी सर्वोत्तम गिना जाता है ॥ १२ ॥

अथ पिङ्गला ॥

कठिनकूरविद्यानां पठने पाठने तथा ।

स्त्रीसंगवेश्यागमने महानौकाधिरोहणे ॥ १३ ॥

कठिन व कूरकर्म मारणआदि कृत्य, विद्याओं का पढना, पढ़ाना, स्त्रीसमागम, वेश्यागमन और जहाज में चढना इनमें पिङ्गलानाड़ी शुभदायक होती है ॥ १३ ॥

अष्टकार्ये सुरापाने वीरमन्त्राद्युपासने ।

विह्लोदध्वंसदेशादौ विषदाने च वैरिणाम् ॥ १४ ॥

अष्टकार्य, मध्यपान, वीरमन्त्रआदि की उपासना, विह्लहोना, देश आदिकों का विध्वंस होजाना और शब्दों को विषदेना इनमें सूर्यका चार शुभदायक होताहै ॥ १४ ॥

शास्त्राभ्यासे च गमने मृगया पशुविक्रये ।

इष्टिकाकाष्ठपाषाणरत्नघर्षणदारणे ॥ १५ ॥

शास्त्रोंका अभ्यास, ग्रामान्तर का गमन, शिकारखेलना, पशुओं का बेचना, ईट-काठ-पत्थर और रबोंका विसना व तोड़ना इनमें पिङ्गला शुभदायक होती है ॥ १५ ॥

गत्यभ्यासे यन्त्रतन्त्रे दुर्गपर्वतरोहणे ।

द्यूते चौर्ये गजाश्वादिरथसाधनवाहने ॥ १६ ॥

चलने का अभ्यास, यन्त्र, तन्त्र, किला व पर्वत पर चढना, जुआखेलना, चोरी करना, हाथी, घोड़ा, बैल और रथका साधना व चलाना इनमें सूर्य का चार शुभदायक होता है ॥ १६ ॥

व्यायामे मारणोच्चाटे षट्कर्मादिकसाधने ।

यक्षिणीयक्षवेतालविषभूतादिनिश्रहे ॥ १७ ॥

व्यायाम (कसरतकरना) मारण व उच्चाटन आदि षट्कर्मों का साधना यक्षिणी, यक्ष, वेताल, विष और भूत आदिकोंका रोकना इनमें पिङ्गलानाड़ी शुभदायक होती है ॥ १७ ॥

खरोष्टमहिषादीनां गजाश्वारोहणे तथा ।

नदीजलौघतरणे भेषजे लिपिलेखने ॥ १८ ॥

गधा, ऊंट, भैंसादि, हाथी व घोड़ा पर चढ़ना और नदी के जलसमूह को तैरना या पार होना, दवाई करना, लीपना और लिखना इनमें सूर्यका स्वर शुभदायक होता है ॥ १८ ॥

मारणे मोहने स्तम्भे विद्वेषोच्चाटने वशे ।

प्रेरणे कर्षणे क्षोभे दाने च क्रयविक्रये ॥ १९ ॥

मारण, मोहन, स्तम्भन (रोकदेना), विद्वेषण, उच्चाटन, वशीकरण, प्रेरण, खेतीकरना, क्षोभ, दान, खरीदना और बेचना इनमें सूर्यका चार उत्तम होता है ॥ १९ ॥

प्रेताकर्षणविद्वेषशन्तुनिग्रहणेऽपि च ।

खङ्गहस्ते वैरियुद्धे भोगे वा राजदर्शने ॥

भोज्ये स्नाने व्यवहारे दीप्तकार्ये रविः शुभः ॥ २० ॥

प्रेतोंका बुलाना, वैर, वैरियों को वशमें लाना, तलवार को हाथ में लेना, वैरियों से लड़ना, भोग, राजदर्शन, भोजन, स्नान, व्यवहार और दीप्तकार्य में सूर्यका स्वर शुभदायक कहा है ॥ २० ॥

भुक्तमार्गेण मन्दाग्नौ स्त्रीणां वश्यादिकर्मणि ।

शयनं सूर्यवाहेन कर्तव्यं सर्वदा बुधैः ॥ २१ ॥

भोजनकी मार्ग से मन्दाग्निं का होना, स्त्रियों को वशीकरण आदि करना और सोना ये सब काम पण्डितों को सूर्यस्वर के चलते समय मेंही करना चाहिये ॥ २१ ॥

ब्रूराषि सर्वकर्माणि चराषि विविधानि च ।

तानि सिध्यन्ति सूर्येण नात्र कार्या विचारणा ॥ २२ ॥

समस्त कठिन काम और अनेक चर काम वे सूर्य के स्वर सेही सिद्ध होते हैं इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥

अथ सुषुम्ना ॥

क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः ।

सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा स्पृता ॥ २३ ॥

जिस समय वायु क्षणभर वामभाग में और क्षणभर दाहिने भाग में वहती हो वह सुषुम्ना जानना चाहिये जोकि सर्वकार्यों की दृग्नेहारी कही है ॥ २३ ॥

तस्यां नाड्यां स्थितो वहिर्ज्वलते कालरूपकः ।  
विषवन्तं विजानीयात्सर्वकार्यविनाशनम् ॥ २४ ॥

उस नाड़ी में टिकी हुई आगी कालरूप होकर जलती है उसको विषवाली व सर्वकार्य विनाशनेवाली जानना चाहिये ॥ २४ ॥

यदानुक्रममुष्मद्वय यस्य नाडीद्रयं वहेत् ।  
तदा तस्य विजानीयादशुभं नात्र संशयः ॥ २५ ॥

जिस समय अपने २ स्वाभाविक क्रमका उल्लङ्घन कर जिस पुरुष की दोनों नाड़ी चहती हों तो उसको अशुभ जानना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥

क्षणं वामे क्षणं दक्षे विषमं भावमादिशेत् ।  
विपरीतं फलं सर्वं ज्ञातव्यं च वरानने ॥ २६ ॥

क्षणभर वामभाग व क्षणभर दाहिनेभाग में पवन चले उसको विषमभाव कहै अहो रानने ! उसका सारा फल विपरीत ( उलटा ) जानना चाहिये ॥ २६ ॥

उभयोरेव संचारं विषवन्तं विदुर्बुधाः ।  
न कुर्यात्कूरसौम्यानि तत्सर्वं विफलं भवेत् ॥ २७ ॥

इडा व पिङ्गला दोनों नाड़ियों के ही संचारको परिष्ठलोग विषवान् कहते हैं उसमें कूर सौम्यकार्यों को न करे यदि करे तो वह सारे काम विफल होजाते हैं ॥ २७ ॥

जीविते मरणे प्रश्ने लाभालाभे जयाजये ।  
विषमे विपरीते च संस्मरेऽजगदीश्वरम् ॥ २८ ॥

जीने, मरने, पूछने, लाभ, अलाभ, जय, पराजय और विषम व विपरीत स्वर के उलने में जगदीश का स्मरण करे ॥ २८ ॥

ईश्वरे चिन्तिते कार्यं योगाभ्यासादि कर्म च ।  
अन्यतत्र न कर्तव्यं जयलाभसुखैषिभिः ॥ २९ ॥

जब ईश्वर का चिन्तन करे उस समय योगाभ्यास आदि कर्मही करना चाहिये वहाँ च जय, लाभ व सुख के अभिलाषी जनोंको और कोई काम करना उचित नहीं है ॥ २९ ॥

सूर्येण वहमानायां सुषुम्नायां मुहुर्मुहुः ।  
शापं दद्याद्वरं दद्यात्सर्वथैव तदन्यथा ॥ ३० ॥

<sup>१</sup> " आत्रुपूर्वाभियां वा वृत् परिपादी अनुक्रमः " ( इत्यमरः ) ॥

जब सुपुन्ना नाड़ी सूर्यके स्वर से वारम्बार बहती हो तब जो शाप या वरको देवे वह सर्वथा अन्यथा ( भूंठा या उलटा ) हो जाता है ॥ ३० ॥

नाड़ीसंक्रमणे काले तत्त्वसंगमनेपि च ।

शुभं किञ्चिन्न कर्तव्यं पुण्यदानादिकानि च ॥ ३१ ॥

नाड़ी के संक्रमणकाल और तत्त्वों के संचलन में भी कुछ पुण्यदान आदि शुभकर्म नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥

विषमस्योदयो यत्र मनसापि न चिन्तयेत् ।

यात्रा हानिकरी तस्य मृत्युः क्लेशो न संशयः ॥ ३२ ॥

जिस समय विषमस्वर का उदय हो तब मनसे भी किसी कार्य की चिन्तना न करे यदि करे तो उस मनुष्यकी यात्रा हानिकारिणी होती है और मृत्यु और पीड़ा निस्सन्देह होती है ॥ ३२ ॥

एुरो वामोर्ध्वतश्चन्द्रो दक्षाधः पृष्ठतो रविः ।

पूर्णस्त्रिविवेकोयं ज्ञातव्यो देशिकैः सदा ॥ ३३ ॥

जब चन्द्रमा का स्वर बहता हो उस समय आगे, वायें व ऊपरले भाग में खड़ा हुआ पष्टा प्रश्न करे तो वह पूर्ण होता है और जब सूर्य का स्वर चले उस समय पूछने वाला दाहिने, निचले या पीठ के पीछे आनकर पूछे तो वह भूंठा हो जाता है यह पूर्णस्त्रिकै-( खाली ) का विचार परिदृतों को सदैव जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

ऊर्ध्ववामाग्रतो दूतो ज्ञेयो वामपथि स्थितः ।

पृष्ठे दक्षे तथाऽधस्तात्सूर्यवाहागतः शुभः ॥ ३४ ॥

जब इहानाड़ी का स्वर वामपार्श में स्थित हो उस समय ऊपर वायें व आगे आया हुआ दूत शुभदायक जानना चाहिये और जब सूर्यका स्वर बहता हो उस समय पीछे, दाहिने तथा नीचे तरफ आया हुआ दूत शुभदायक होता है ॥ ३४ ॥

अनादिर्विषमः सन्धिर्निराहारो निराकुलः ।

परे सूक्ष्मे विलीयेत सा सन्ध्या सद्विरुच्यते ॥ ३५ ॥

आदिरहित, विषमरूप, सन्धि ( सुपुन्ना ) निराहार व निराकुल होकर पर व सूक्ष्मरूप ब्रह्म में लीन हो जावे उसको सज्जनों ने सन्ध्या कहा है ॥ ३५ ॥

न वेदं वेद इत्याहुर्वेदो वेदो न विद्यते ।

परात्मा विद्यते येन स वेदो विद्धिरुच्यते ॥ ३६ ॥

सज्जनलोग वेद को वेद नहीं कहते हैं और न वेद वेदरूप होकर विद्यमान रहता है रन जिससे परात्मा जाना जाता है उसीको विद्वानों ने 'वेद' कहा है ॥ ३६ ॥

न सन्ध्यां सन्धिरित्याहुः सन्ध्या सन्धिर्न गद्यते ।

विषमः सन्धिगः प्राणः स सन्धिस्सद्धिरुच्यते ॥ ३७ ॥

पण्डितलोग सन्ध्या को सन्धि नहीं कहते हैं और न सन्ध्या को सन्धि कहसक्ते हैं रन जब प्राण विषम सन्धि में जाता है उसीको सज्जनों ने सन्धि कहा है ॥ ३७ ॥

इति नाडीभेदः ।

श्रीदेव्युनाच ।

देवदेव महादेव सर्वसंसारतारक ।

स्थितं त्वदीयहृदये रहस्यं वद मे प्रभो ॥ ३८ ॥

श्रीपर्वतीजी बोलीं कि हे देवों के देव, महादेव, सर्वसंसारतारक, प्रभुजी ! जो स्य आपके हृदय में टिका है उसको मुझसे कहो ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच ।

स्वरज्ञानरहस्यानु न काचिच्छेष्टदेवता ।

स्वरज्ञानरतो योगी स योगी परमो मतः ॥ ३९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि, स्वरज्ञान के रहस्य से परे कोई इष्टदेवता नहीं और जो योगी स्वरज्ञान में रत रहता है वही योगी परम माना जाता है ॥ ३९ ॥

पञ्चतत्त्वाङ्गवेत्सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं प्रलीयते ।

पञ्चतत्त्वं परन्तत्त्वं तत्त्वातीतं निरञ्जनम् ॥ ४० ॥

पांचों तत्त्वों से सृष्टि उपजती है व तत्त्व में ही तत्त्व लीन हो जाता है व पञ्चतत्त्व ही अपन्तत्व कहाता है और परब्रह्म तत्त्वों से पर माना जाता है ॥ ४० ॥

तत्त्वानां नाम विज्ञेयं सिद्धियोगेन योगिनाम् ।

भूतानां दुष्टचिह्नानि जानातीह स्वरोत्तमः ॥ ४१ ॥

योगीजनों को सिद्धियोग से तत्त्वों का नाम जानना चाहिये जो प्राणी स्वरों को नाम समझता है वह सर्वप्राणियों के दुष्टचिह्नों को भी जानसकता है ॥ ४१ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।

पञ्चभूतात्मकं विश्वं यो जानाति स पूजितः ॥ ४२ ॥

? योगश्चित्तवृत्तिनिरोधस्सोऽस्त्यस्येति योगी ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पञ्चभूतों से उपजे विश्वको जो जानता है वही पूजित होता है ॥ ४२ ॥

सर्वलोकस्थजीवानां न देहो भिन्नतत्त्वकः ।

भूलोकात्सत्यपर्यन्तं नाडीभेदः पृथक् पृथक् ॥ ४३ ॥

भूलोक से लेकर सत्यलोकपर्यन्त सबलोकों में रहते हुए जितने जीव हैं उनका देह भिन्न भिन्न तत्त्वरूप नहीं है परन्तु नाड़ी का भेद अलग अलग रहता है ॥ ४३ ॥

वामे वा दक्षिणे वापि उदयाः पञ्च कीर्तिर्ताः ।

अष्टधा तत्त्वविज्ञानं शृणु वक्ष्यामि सुन्दरि ॥ ४४ ॥

वामभाग या दक्षिणभाग में भी पांच पांच उदय कहे हैं उन तत्त्वों का विज्ञान आठ भाँति का होता है अहो सुन्दरि ! उसे मैं कहूँगा तुम सुनो ॥ ४४ ॥

प्रथमे तत्त्वसंख्यानं द्वितीये श्वाससन्धयः ।

तृतीये स्वरचिह्नानि चतुर्थे स्थानमेव च ॥ ४५ ॥

पहले भेद में तत्त्वों की गणना, दूसरे भेद में श्वास की सन्धि, तीसरे भेद में स्वरों के निशान और चौथे भेद में स्वरों का स्थानही कहा है ॥ ४५ ॥

पञ्चमे तस्य वर्णाश्च पष्ठे तु प्राण एव च ।

सप्तमे स्वादसंयुक्तं अष्टमे गतिलक्षणम् ॥ ४६ ॥

पांचवें भेद में उन तत्त्वों का झङ्ग, छठेभेद में प्राण, सातवें भेद में स्वाद का संयोग और आठवें भेद में गतिके लक्षण कहे हैं ॥ ४६ ॥

एवमष्टविधं प्राणं विषुवन्तं चराचरम् ।

स्वरात्परतरं देवि नान्यथा त्वम्बुजेक्षणे ॥ ४७ ॥

इसप्रकार चराचर में व्यापक आठ प्रकारका प्राण होता है अहो देवि ! अयि कञ्जलो-चने ! स्वर से परतर इतर ज्ञान कोई नहीं है ॥ ४७ ॥

निरीक्षितव्यं यत्नेन सदा प्रत्यूषकालतः ।

कालस्य वञ्चनार्थाय कर्म कुर्वन्ति योगिनः ॥ ४८ ॥

प्रभातकाल से लेकर सदैव यत्र के साथ स्वर को देखना चाहिये क्योंकि योगीजन कालक्षेप के लिये कर्मों को करते हैं इसीलिये उनको स्वर व तत्त्व का विज्ञान बना रहता है ॥ ४८ ॥

श्रुत्योरङ्गुष्ठकौ मध्याङ्गुल्यौ नासापुटद्वये ।  
वदनप्रान्तके चान्याङ्गुलीर्दद्याच्च नेत्रयोः ॥ ४६ ॥

कानों में दोनों अँगूठे देवे, दोनों नासा पुटों में मध्यमा अँगुली और मुखप्रान्त तथा त्रों में अन्य शेष अँगुलियों को देवे यानी नेत्रों में तर्जनी और अनामिका व कनिष्ठा को स्खान्त में लगाना चाहिये ॥ ४६ ॥

अस्यान्तस्तु पृथिव्यादितत्त्वज्ञानं भवेत्कमात् ।  
पीतश्वेतारुणश्यामैर्विन्दुभिर्निरूपाधिकम् ॥ ५० ॥

इसके बीचमें पृथ्वी आदितत्त्वों का ज्ञान क्रमसे पीला, सफेद, लाल और काले नंदुओं से उपाधिरहित प्रतीत होता है यानी पृथ्वी का पीलावर्ण, जलका सफेद, आगी का लाल, वायुका श्याम और आकाश का चित्रवर्ण कहाजाता है ॥ ५० ॥

दर्पणेन समालोक्य तत्र श्वासं विनिक्षिपेत् ।  
आकारैस्तु विजानीयात्तत्त्वभेदं विचक्षणः ॥ ५१ ॥

वहां दर्पण में मुखका अवलोकनकर श्वास को छोड़े और आकारों से तत्त्वों का द परिषिक्त करो जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

चतुरसं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्तुलं स्मृतम् ।  
विन्दुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्वलक्षणम् ॥ ५२ ॥

चतुष्कोण, अर्धचन्द्र, त्रिकोण, वर्तुल ( गोल ) और विन्दुरूप इन आकारों से तत्त्वों का लक्षण जानना चाहिये यानी पृथ्वी चतुष्कोण ( चौकोर ) जल अर्धचन्द्राकार, तेज त्रिकोणाकार, वायु वर्तुलाकार और आकाश विन्दुकार कहलाता है ॥ ५२ ॥

मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्ध्वं वहति चानलः ।  
तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभो वहति संक्रमे ॥ ५३ ॥

बीचमें पृथ्वी, नीचे जल, ऊपर आगी और तिरछा वायु का प्रवाह चलता है और दो स्वरों के चलनेपर आकाशतत्त्व बहता है ॥ ५३ ॥

आपः श्वेतः क्षितिः पीता रक्तवर्णो हुताशनः ।  
मारुतो नीलजीमूत आकाशः सर्ववर्णकः ॥ ५४ ॥

जल श्वेतवर्ण, पृथ्वी पीतवर्ण, अग्नि रक्तवर्ण, वायु श्यामवर्ण और आकाश सर्व रग्णोंवाला कहलाता है ॥ ५४ ॥

अथ स्थानपरत्वात्त्वज्ञानम्—

स्कन्धद्वये स्थितो वह्निर्भिमूले प्रभञ्जनः ।

जानुदेशो क्षितिस्तोयं पादान्ते मस्तके नभः ॥ ५५ ॥

दोनों कन्धों पर आगी, नाभिमूल में वायु, गुद्धुओं में पृथ्वी, पादान्त में जल और मस्तक में आकाशतत्त्व टिका रहता है ॥ ५५ ॥

अथ स्वादात्त्वज्ञानप्रकारमाह—

माहेयं मधुरं स्वादे कषायं जलमेव च ।

तीक्ष्णं तेजः समीरोऽम्ल आकाशं कटुकं तथा ॥ ५६ ॥

स्वाद में पृथ्वी का तत्त्व यीठा, जलका तत्त्व कषैला, अग्नि का तत्त्व तीखा, वायु का तत्त्व खट्टा और आकाश का तत्त्व कटुआ कहलाता है ॥ ५६ ॥

अथ गत्या तत्त्वज्ञानम्—

अष्टाङ्गुलं वहेद्रायुरनलश्चतुरङ्गुलम् ।

द्वादशाङ्गुलं माहेयं वारुणं पौडशाङ्गुलम् ॥ ५७ ॥

वायुतत्त्व आठ अङ्गुल वहता है, अग्नितत्त्व चार अङ्गुल, पृथ्वीतत्त्व बारह अङ्गुल और जलतत्त्व सोलह अङ्गुल चलता है ॥ ५७ ॥

ऊर्ध्वं मृत्युरधः शान्तिस्तर्यगुच्छाटनं तथा ।

मध्ये स्तम्भं विजानीयान्नभः सर्वत्र मध्यमम् ॥ ५८ ॥

जब ऊर्ध्व स्वर चले तो मृत्यु, नीचा स्वर चले तो शान्ति, तिरीछा स्वर चले तो उच्छाटन और मध्य का स्वर चले तो स्तम्भ और आकाशतत्त्व सर्वत्र मध्यम जानना चाहिये ॥ ५८ ॥

पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे ।

तेजसि कूरकर्माणि मारणोच्छाटनेऽनिले ॥ ५९ ॥

पृथ्वीतत्त्व में स्थिर कार्य, जल में चरकाम, तेज में कूरकर्म और वायुतत्त्व में मारण और उच्छाटन सिद्ध होता है ॥ ५९ ॥

व्योम्नि किञ्चिन्न कर्तव्यमध्यसेव्योगसेवनम् ।

शून्यता सर्वकार्येषु नात्र कार्या विचारणा ॥ ६० ॥

आकाशतत्त्व में कुछ काम नहीं करना चाहिये वरन केवल योग सेवन काही अभ्यास रक्षते और सब कामों में शून्यता होती है इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ६० ॥

पृथ्वीजलाभ्यां सिद्धिः स्यान्मृत्युर्वहौ क्षयो ऽनिले ।

नभसो निष्फलं सर्वं ज्ञातव्यं तत्त्ववादिभिः ॥ ६१ ॥

पृथ्वी व जलतत्त्व से सिद्धि होती है अग्नितत्त्व में मृत्यु और वायुतत्त्व में क्षय होजाता है और आकाशतत्त्व से सब काम निष्फल होजाते हैं यह तत्त्ववादियों को जानना चाहिये ॥ ६१ ॥

चिरलाभः क्षितेऽर्जेयस्तत्क्षणे तौयतत्त्वतः ।

हानिः स्याद्विवाताभ्यां नभसो निष्फलं भवेत् ॥ ६२ ॥

पृथ्वीतत्त्व से बहुतसा लाभ जानना चाहिये, जलतत्त्व से उसी क्षणमें लाभ होता है अग्नि और वायुतत्त्व से हानि होती है और आकाशतत्त्व से सब काम निष्फल होजाते हैं ॥ ६२ ॥

पीतः शनैर्मध्यवाही हनुर्यावद्गुरुध्वनिः ।

कवोषणः पार्थिवो वायुः स्थिरकार्यप्रसाधकः ॥ ६३ ॥

पीला, धीरे धीरे या मध्यगति से चलनेवाला, ठेढ़ीपर्यन्त भारी शब्दका रखनेहारा, कुछेक गरम पृथ्वीसम्बन्धी वायु स्थिरकार्यों का साधक होता है ॥ ६३ ॥

अधोवाही गुरुध्वानः शीघ्रगः शीतलः स्थितः ।

यः पोदशाङ्कुलो वायुः स आपः शुभकर्मकृत् ॥ ६४ ॥

नीचवाही, महाध्वनिकारी, शीघ्रगमी, ठएढ़ा होकर टिकाहुआ जो सोलह अङ्कुलवाल वायु वह जलसम्बन्धी है जोकि शुभकर्मों का करनेवाला होता है ॥ ६४ ॥

आवर्तगश्चात्युष्णश्च शोणाभश्चतुरङ्कुलः ।

ऊर्ध्ववाही च यः कूरकर्मकारी स तैजसः ॥ ६५ ॥

चकर देकर जानेवाला, बड़ागरम, लाल, चारअङ्कुल ऊपर जानेवाला जो वायु वह तैजस होकर कूर कर्मोंका करनेवाला होता है ॥ ६५ ॥

ऊष्णः शीतः कृष्णवर्णस्तिर्यग्म्यष्टकाङ्कुलः ।

वायुः पवनसंज्ञस्तु चरकर्मप्रसाधकः ॥ ६६ ॥

जो गरम, ठएढ़ा, श्यामवर्ण, तिरीछा जानेवाला, आठ अङ्कुल का हो वह वायु पवन-संज्ञक होकर चरकर्मों का प्रसाधक होता है ॥ ६६ ॥

यः समीरः समरसः सर्वतत्त्वगुणावहः ।

आम्बरन्तं विजानीयाद्योगिनां योगदायकम् ॥ ६७ ॥

जो वायु समरस यानी एकरस होकर समस्त तत्त्वों के गुणों का वाहक होता है वह आकाशसम्बन्धी जानना चाहिये जोकि योगियों को योगदायक होता है ॥ ६७ ॥

पीतवर्णं चतुष्कोणं मधुरं मध्यमाश्रितम् ।

भोगदं पार्थिवं तत्त्वं प्रवाहे द्वादशाङ्गुलम् ॥ ६८ ॥

पीले वर्णवाला, चौकोर, मीठा, बीचमें टिकाहुआ जोकि प्रवाह में वारह अङ्गुलका होता है वह पृथ्वीतत्त्व भोगदायक जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

श्वेतमधेन्दुसंकाशं स्वादुकापायमार्दकम् ।

लाभकद्वारुणं तत्त्वं प्रवाहे षोडशाङ्गुलम् ॥ ६९ ॥

जिसका वर्ण सफेद हो जोकि अर्धचन्द्राकार, स्वादिल, कपैला व गीला होकर प्रवाह में सोलह अङ्गुलका रहता है उसे जलतत्त्व कहते हैं और वह लाभकारी होता है ॥ ६९ ॥

रक्तं त्रिकोणं नीक्षणं च ऊर्ध्वभागप्रवाहकम् ।

दीपं च तैजसं तत्त्वं प्रवाहे चतुरङ्गुलम् ॥ ७० ॥

जिसका वर्ण लाल हो जोकि तिकोना, तीखा व ऊपरले भाग में वहनेवाला होताहुआ प्रकाशित होकर प्रवाह में चार अङ्गुलका रहता है उसे तैजसतत्त्व कहते हैं ॥ ७० ॥

नीलं च वर्तुलाकारं स्वादम्लं तिर्यगाश्रितम् ।

चपलं मारुतं तत्त्वं प्रवाहेष्ठाङ्गुलं स्मृतम् ॥ ७१ ॥

जोकि श्यामवर्ण, गोलाकार, स्वाद में खटा, तिर्यगामी होकर चपल होताहुआ प्रवाह में आठ अंगुलवाला कहाता है उसे वायुतत्त्व कहते हैं ॥ ७१ ॥

वर्णाकारे स्वादवाहे अद्यकं सर्वगामिनम् ।

मोक्षदं नाभसं तत्त्वं सर्वकार्येषु निष्फलम् ॥ ७२ ॥

वर्ण, आकार, स्वाद और प्रवाह में छिपाहुआ सबों में जानेवाला व मोक्षदायक होकर आकाशतत्त्व कहलाता है जोकि सब कार्यों में निष्फल होता है ॥ ७२ ॥

पृथ्वीजले शुभे तत्त्वे तेजोमिश्रफलोदयम् ।

हानिमृत्युकरौ पुंसामशुभौ व्योममारुतौ ॥ ७३ ॥

पृथ्वीतत्त्व व जलतत्त्व ये दोनों शुभदायक होते हैं व अग्नितत्त्व मिश्रफल का उदय

वाला होता है और आकाशतत्त्व व वायुतत्त्व ये दोनों पुरुषों को अशुभदायक होकर हानि व मौतके करनेवाले होते हैं ॥ ७३ ॥

आपूर्वपश्चिमे पृथ्वी तेजश्च दक्षिणे तथा ।

वायुश्चोत्तरदिग्ज्ञेयो मध्ये कोणगतं नभः ॥ ७४ ॥

पूर्वसे लेकर पश्चिमपर्यन्त पृथ्वीतत्त्व, दक्षिण में तेजतत्त्व, उत्तर में वायुतत्त्व और मध्य कोण में गयाहुआ आकाशतत्त्व जानना चाहिये ॥ ७४ ॥

चन्द्रे पृथ्वी जले स्यातां सूर्ये चाग्निर्यदा भवेत् ।

तदा सिद्धिर्न सन्देहः सौम्यासौम्येषु कर्मसु ॥ ७५ ॥

जिससमय चन्द्रपा के स्वर में पृथ्वी व जलतत्त्व हों और सूर्य के स्वर में अग्नितत्त्व हो उससमय शुभाशुभकारों में निस्सन्देह सिद्धि होती है ॥ ७५ ॥

पृथ्वीलाभकृदह्नि स्यान्निशायां लाभकृज्जलम् ।

वहौ मृत्युः क्षयो वायुर्नभस्थानं दहेत्कचित् ॥ ७६ ॥

जो दिनमें पृथ्वीतत्त्व और रात्रि में जलतत्त्व हो तो लाभकारी होता है और वहितत्त्व में मृत्यु, वायुतत्त्व में विनाश और आकाशतत्त्व कभी स्थानको जलाता है ॥ ७६ ॥

जीवितव्ये जये लाभे कृष्णां च धनकर्मणि ।

मन्त्रार्थं युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ॥ ७७ ॥

जीवन, जय, लाभ, खेती, धनका कर्म, मन्त्रका कार्य, युद्ध, प्रश्न, गमन और आगमन इनमें पृथ्वीतत्त्व शुभदायक होता है ॥ ७७ ॥

आयाति वास्तु तत्त्वे शत्रुरस्ति शुभं क्षितौ ।

प्रयाति वायुतोऽन्यंत्र हानिमृत्यु नभोनले ॥ ७८ ॥

यदि जलका तत्त्व होवे तो वैरी आता है, पृथ्वीतत्त्व होवे तो शुभ होता है यदि वायुतत्त्व होतो वैरी अन्य स्थान को पथारता है और यदि आकाश व अग्नितत्त्व हो तो हानि व मृत्यु होती है ॥ ७८ ॥

पृथिव्यां मूलचिन्ता स्याजीवस्य जलवातयोः ।

तेजसा धातुचिन्ता स्याच्छून्यमाकाशतो वदेत् ॥ ७९ ॥

यदि प्रश्न करने के समय पृथ्वीतत्त्व हो तो मूलचिन्ता होती है, जल व वायुतत्त्व हो तो जीवकी चिन्ता यदि आग्नितत्त्व हो तो धातुकी चिन्ता कहना चाहिये और यदि आकाश-तत्त्व हो तो शून्य बतलाना चाहिये ॥ ७९ ॥

पृथिव्यां बहुपादाः स्युर्द्धिपदस्तोयवायुतः ।  
तेजस्येव चतुष्पादो नभसा पादवर्जितः ॥ ८० ॥

यदि पृथ्वीतत्त्व हो तो बहुतसे पैरोंवाले जीवकी चिन्ता कहे यदि जल व वायुतत्त्व हो तो द्विपदकी चिन्ता, अग्नितत्त्व हो तो चौपाये की चिन्ता बतलावे और यदि आकाश तत्त्व हो तो बेपैर की चिन्ता कहना चाहिये ॥ ८० ॥

कुजो वह्नी रविः पृथ्वी सौरिरापः प्रकीर्तिः ।  
वायुस्थानस्थितो राहुर्दक्षरन्ध्रप्रवाहकः ॥ ८१ ॥

यदि दाहिना स्वर वहता हो तो अग्नितत्त्व में मङ्गल, पृथ्वीतत्त्व में सूर्य, जलतत्त्व में शनैश्चर और वायुतत्त्व में राहु टिकारहता है ॥ ८१ ॥

जलं चन्द्रो बुधः पृथ्वी गुरुर्वातः सितोऽनलः ।  
वामनाडयां स्थिताः सर्वे सर्वकार्येषु निश्चिताः ॥ ८२ ॥

जलतत्त्व में चन्द्रमा, पृथ्वीतत्त्व में बुध, वायुतत्त्व में बृहस्पति और अग्नितत्त्व में शुक्र ये सब ग्रह वामनाडी में टिकेहुए सम्पूर्ण कार्यों में निश्चित हैं ॥ ८२ ॥

पृथ्वी बुधो जलादिन्दुः शुक्रो वह्नी रविः कुजः ।  
वायू राहुशनीव्योमगुरुरेव प्रकीर्तिः ॥ ८३ ॥

पृथ्वीतत्त्व में बुध, जलतत्त्व में चन्द्रमा व शुक्र अग्नितत्त्व में सूर्य व मङ्गल वायुतत्त्व में राहु व शनैश्चर और आकाशतत्त्व में बृहस्पति कहा है ॥ ८३ ॥

प्रवासप्रश्न आदित्ये यदि राहुर्गतोनिले ।  
तदासौ चलितो द्वेयः स्थानान्तरमपेक्षते ॥ ८४ ॥

सूर्यस्वर के चलने के समय प्रवासप्रश्न में यदि राहु वायुतत्त्वमें गया हो तो वह प्रवासी स्थानान्तर को चलचुका है ऐसा जानना चाहिये ॥ ८४ ॥

आयाति वारुणे तत्वे तत्रैवास्ति शुभं क्षितौ ।

प्रवासी पवनेऽन्यत्र मृत्युरेवानले भवेत् ॥ ८५ ॥

यदि जलतत्त्व हो तो परदेशी आता है व जो पृथ्वीतत्त्व हो तो परदेशी जहां गया था वहां ही सुखी है यदि वायुतत्त्व हो तो प्रवासी अन्य स्थान को चला गया और यदि अग्नितत्त्व हो तो प्रवासी की मौतही होजाती है ॥ ८५ ॥

पार्थिवे मूलविज्ञानं शुभं कार्यं जले तथा ।

आग्नेये धातुविज्ञानं व्योम्नि शून्यं विनिर्दिशेत् ॥ ८६ ॥

पृथ्वीतत्त्व में मूलका विज्ञान होता है, जलतत्त्व में शुभकार्य, अग्नि तत्त्व में धातुओं का विज्ञान और आकाशतत्त्व में शून्यता को कहै ॥ ८६ ॥

तुष्टिः पुष्टी रतिः क्रीडा जयहर्षो धराजले ।

तेजोवायोश्च सुप्राक्षो ज्वरकम्पः प्रवासिनः ॥ ८७ ॥

यदि प्रवासी के प्रश्न के समय पृथ्वी व जलतत्त्व हो तो तुष्टि, पुष्टि, रति, क्रीडा, जय और हर्ष होता है और यदि तेज और वायुतत्त्व हो तो परदेशी आंखें मीचे सोता हुआ चर से कांपता है ॥ ८७ ॥

गतायुर्मृत्युराकाशे तत्त्वस्थाने प्रकीर्तिताः ।

द्वादशैताः प्रयत्नेन ज्ञातव्या देशिकैः सदाः ॥ ८८ ॥

यदि आकाशतत्त्व हो तो आयुरहित परदेशी की मौत कही है ये बारह प्रश्न वड़े यन्म से पण्डितों को सदैव जानना चाहिये ॥ ८८ ॥

पूर्वस्यां पश्चिमे याम्ये उत्तरस्यां यथाक्रमम् ।

पृथिव्यादीनि भूतानि बलिष्ठानि विनिर्दिशेत् ॥ ८९ ॥

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चारों दिशओं में क्रमसे पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चारों भूत बलवान् कहलाते हैं ॥ ८९ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।

पञ्चभूतात्मको देहो ज्ञातव्यश्च वरानने ॥ ९० ॥

अहो वरानने ! पृथ्वी, जल, आगी, वायु और आकाश इन पञ्चभूतवाले देह को जानना चाहिये ॥ ९० ॥

अस्थि मांसं त्वचा नाडी रोम चैव तु पञ्चमम् ।

पृथ्वीपञ्चगुणः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ ९१ ॥

हाड़, मांस, खाल, नाडी और पांचवां लोम ये पृथ्वी के पांच गुण कहे हैं यह ज्ञान नेदान्तवेत्ता ब्रह्मज्ञानी कहते हैं ॥ ९१ ॥

शुक्रशोणितमज्जाश्च मूत्रं लालां च पञ्चमम् ।

आपः पञ्चगुणः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ ९२ ॥

ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं कि, वीज, रुधिर, मज्जा, मूत्र और पांचवां लाल ये जलके पांच गुण कहे हैं ॥ ९२ ॥

क्षुधा तृषा तथा निद्रा कान्तिरात्स्यमेव च ।

तेजः पञ्चगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ ६३ ॥

ब्रह्मज्ञानी ने कहा है कि, क्षुधा, तृषा, निद्रा, कान्ति और आत्मस्य ये पांच अग्नि के गुण कहे हैं ॥ ६३ ॥

धावनं चलनं ग्रन्थिः संकोचनप्रसारणे ।

वायोः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ ६४ ॥

वेदान्ती लोग कहते हैं कि, दौड़ना, चलना, गांठना, सिकोड़ना और पसारना ये वायु के पांच गुण कहे हैं ॥ ६४ ॥

रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहश्च पञ्चमः ।

नभः पञ्चगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ ६५ ॥

ब्रह्मज्ञाता वेदान्ती का कथन है कि, प्रीति, वैर, लज्जा, भय और पांचवां मोह ये आकाश के पांच गुण कहे हैं ॥ ६५ ॥

पृथ्व्याः पलानि पञ्चाशत्त्वरिंशत्तथाम्भसः ।

अग्नेस्त्रिंशत्पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दश ॥ ६६ ॥

इस काया में पृथ्वी पचास पल, जल चार्दीस पल, आगी तीस पल, वायु बीस पल और आकाश दश पल रहता है ॥ ६६ ॥

पृथिव्यां चिरकालेन लाभेश्वापः क्षणाद्ववेत् ।

जायते पवने स्वत्पः सिद्धोप्यग्नौ विनश्यति ॥ ६७ ॥

लाभप्रश्न करने के समय पृथ्वीतत्त्व हो तो देर में लाभ होता है, यदि जलतत्त्व हो तो उसी क्षण लाभ होता है, यदि वायुतत्त्व प्रतीत हो तो थोड़ासा लाभ होजाता है और यदि अग्नि तत्त्व हो तो सिद्ध हुआ कार्य भी विनष्ट होजाता है ॥ ६७ ॥

पृथ्व्याः पञ्च ह्यपां भेदा गुणास्तेजो द्विवायुतः ।

नभस्येकगुणश्चैव तत्त्वज्ञानमिदं भवेत् ॥ ६८ ॥

पृथ्वी के पांच गुण, जलके चार गुण, आगी के तीन गुण, वायु के दो गुण और आकाश का एक गुण कहा है यह तत्त्वों का ज्ञान होता है ॥ ६८ ॥

फूत्कारकृत्प्रस्फुटिता विदीर्णा पतिता धरा ।

ददाति सर्वकार्येषु अवस्थासदृशं फलम् ॥ ६६ ॥

फूत्कार की करनेहारी, फूटी, फटी व दृथा पड़ी हुई पृथ्वी सब कार्यों में अवस्था के अनुसार फल को देती है ॥ ६६ ॥

धनिष्ठा रोहिणी ज्येष्ठानुराधा श्रवणं तथा ।

आभिजिदुत्तरापाढा पृथ्वीतत्त्वमुदाहृतम् ॥ २०० ॥

धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् और उत्तरापाढा ये सात नक्षत्र पृथ्वीतत्त्ववाले कहे हैं ॥ २०० ॥

पूर्वापाढा तथाश्लेषा मूलमार्दी च रेती ।

उत्तराभाद्रपदातोयतत्त्वं शतभिषक्तुं प्रिये ॥ १ ॥

अयि प्रिये ! पूर्वापाढा, आश्लेषा, मूल, आर्द्री, रेती, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषक्तु ये सात नक्षत्र जलतत्त्ववाले कहे हैं ॥ १ ॥

भरणी कृत्तिका पुष्यो मधा पूर्वा च फालगुनी ।

पूर्वाभाद्रपदा स्वाती तेजस्तत्त्वमिति प्रिये ! ॥ २ ॥

अहो प्रिये ! भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मधा, पूर्वफालगुनी, पूर्वाभाद्रपदा और स्वाती ये सात नक्षत्र अग्नितत्त्ववाले कहलाते हैं ॥ २ ॥

विशाखोत्तरफालगुन्यौ हस्तचित्रे पुनर्वसु ।

अश्विनीमृगशीर्षे च वायुतत्त्वमुदाहृतम् ॥ ३ ॥

विशाखा, उत्तरफालगुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी और मृगशिरा ये सात नक्षत्र वायुतत्त्ववाले कहे हैं ॥ ३ ॥

वहनाडीस्थितो दूतो यत्पृच्छति शुभाशुभम् ।

तत्सर्वं सिद्धिमाप्नोति शून्ये शून्यं न संशयः ॥ ४ ॥

वहती हुई नाड़ी की ओर टिका हुआ दूत जिस शुभ व अशुभ को पूछता है वह सब सिद्धिको प्राप्त होता है और यदि शून्य में पूछे तो निस्सन्देह शून्य होजाता है ॥ ४ ॥

पूर्णोऽपि निर्गमश्वासे सुतत्वेऽपि न सिद्धिदः ।

सूर्यश्वन्दोऽथवा नृणां संग्रहे सर्वसिद्धिदः ॥ ५ ॥

यदि शुभतत्त्ववाले निकले श्वास में सूर्यस्वर या चन्द्रस्वर पूर्ण होकर भी प्रतीत होते तो मनुष्यों को सिद्धिदायक नहीं होता है और यदि दोनों स्वरों का संग्रह (मेल) होते तो सर्वसिद्धिदायक होजाता है ॥ ५ ॥

तत्त्वे रामो जयं प्राप्तः सुतत्वे च धनञ्जयः ।

कौरवा निहताः सर्वे युद्धे तत्त्वविपर्ययात् ॥ ६ ॥

शुभतत्त्व में ही रामजीने जयको पाया और शुभतत्त्व में ही अर्जुनजी विजयको प्राप्त हुए और तत्त्वों के विपरीत होनेसे सारे कौरवलोग लड़ाई में मारेगये ॥ ६ ॥

जन्मान्तरीयसंस्कारात्प्रसादादथवा गुरोः ।

केषांचिजायते तत्त्ववासना विमलात्मनाम् ॥ ७ ॥

अनेक जन्मान्तरों के संस्कारवलसे अथवा गुरुकी प्रसन्नता से कितेक विमल आत्मावाले जनों को तत्त्वों की वासना उपजती है ॥ ७ ॥

लं वीजं धरणीं ध्यायेचतुरस्त्रां सुपीतभाम् ।

सुगन्धं स्वर्णवर्णभां प्राप्नुयादेहलाघवम् ॥ ८ ॥

जो योगी चौकोर व पीली पृथ्वीके तत्त्व में ( लं ) वीजका ध्यान करे तो वह सुगन्ध सोनेकीसी कान्ति और देहकी लबुताको पाता है ॥ ८ ॥

वं वीजं वारुणं ध्यायेत्तत्त्वमर्धशशिप्रभम् ।

क्षुकृष्णादिसहिष्णुत्वं जलमध्ये च मज्जनम् ॥ ९ ॥

अर्धचन्द्रसम प्रभावाले जलतत्त्व में जो ( वं ) वीज का ध्यान करे तो वह भूख, व्यास आदि सहने व पानी के बीच डुब्बी लगाने की सामर्थ्य को पाता है ॥ ९ ॥

रं वीजमग्निजं ध्यायेत्रिकोणमरुणप्रभम् ।

वह्वन्नपानभोकृत्वमातपाग्निसहिष्णुता ॥ १० ॥

तिकोने, लालवर्णवाले अग्नितत्त्वमें जो योगी ( रं ) वीज का ध्यान करे तो वह बहुतसे अन्नपान भक्षण करने की सामर्थ्य को पाताहुआ घाम व आगीका वेग भी सहसका है ॥ १० ॥

यं वीजं पावनं ध्यायेद्वर्तुलं श्यामलप्रभम् ।

आकाशगमनाद्यं च पक्षिवद्मनं तथा ॥ ११ ॥

गोलाकार, श्यामप्रभावाले वायुतत्त्व में जो ( यं ) वीजका ध्यान करे तो वह आकाश में गमन करने आदिकी और पक्षी के समान उड़ने की भी सामर्थ्य को पाता है ॥ ११ ॥

हं वीजं गगनं ध्यायेत्रिराकारं बहुप्रभम् ।

ज्ञानं त्रिकालविषयमैश्वर्यमणिमादिकम् ॥ १२ ॥

निराकार अधिक प्रभाववाले आकाशतत्त्व में जो ( हं ) बीजका ध्यान करे तो वह त्रिकालविषयक ज्ञान व अणिमादि आठसिद्धिवाले ऐश्वर्य को भी पाता है ॥ १२ ॥

स्वरज्ञानी नरो यत्र धनं नास्ति ततः परम् ।

गम्यते स्वरज्ञानेन ह्यनायासं फलं भवेत् ॥ १३ ॥

जिस स्थानपर स्वरज्ञानी नर बसता है उससे पेरे अन्य कोई धन नहीं है—जो मनुष्य स्वरज्ञान से गमन करता है उसको अनायास ( वेप्रयास ) फल मिलता है ॥ १३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदेव महादेव महाज्ञानं स्वरोदयम् ।

त्रिकालविषयं चैव कथं भवति शंकर ॥ १४ ॥

श्रीदेवीजी बोलीं कि अहो देवताओंके देव, महादेव, शिवशंकरजी ! यह स्वरोदय महाज्ञान है जोकि भूत, भविष्य, वर्तमान कालका प्रकाशक है वह कैसे होता है ? कहिये ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच ।

अर्थकालजयप्रश्नशुभाशुभमिति त्रिधा ।

एतत्त्रिकालविज्ञानं नान्यद्ववति सुन्दरि ॥ १५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि, अहो सुन्दरि ! अर्थ ( मतलब या धन ) काल ( समय ) और जय के प्रश्न का जो शुभाशुभ वह तीन भाँति का है यह स्वरोदयज्ञान त्रिकालविषयक विज्ञान कहलाता है इससे बढ़कर कोई ज्ञान नहीं होता है ॥ १५ ॥

तत्त्वे शुभाशुभं कार्यं तत्त्वे जयपराजयौ ।

तत्त्वे सुभिक्षदुर्भिक्षे तत्त्वं त्रिपदमुच्यते ॥ १६ ॥

तत्त्व मेंही शुभ, अशुभ कार्य होते हैं, तत्त्व मेंही जय-पराजय होते हैं और तत्त्व मेंही सुभिक्ष-दुर्भिक्ष टिके रहते हैं इसलिये तत्त्व ही त्रिपद कहलाता है ॥ १६ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदेव महादेव । सर्वसंसारसागरे ।

किं नरणां परं मित्रं सर्वकार्यार्थसाधकम् ॥ १७ ॥

श्रीदेवीजी बोलीं कि, अहो देवाधिदेव, महादेव ! सप्तस्त संसारसागर में मनुष्यों का परम मित्र व सर्वकार्यार्थों का साधक क्या है ? उसे कहिये ॥ १७ ॥

ईश्वर उवाच ।

प्राण एव परं मित्रं प्राण एव परः सखा ।

प्राणतुल्यः परो बन्धुर्नास्ति नास्ति वरानने ॥ १८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि, अहो वरवदने ! प्राणही परम मित्र है, प्राणही परम सखा ( मिलापी ) है और प्राणों के वरावर अन्य बान्धव नहीं है नहीं है ॥ १८ ॥

श्रीदेवयुवाच ।

कथं प्राणस्थितो वायुर्देहः किं प्राणरूपकः ।

तत्त्वेषु संचरन्प्राणो ज्ञायते योगिभिः कथम् ॥ १९ ॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं कि अहो देव ! वायु प्राण में कैसे टिका रहता है व देह प्राणरूप कैसे होसक्ता है और तत्त्वों में विचरता हुआ प्राण योगियों से कैसे जाना जाता है ॥ १९ ॥

श्रीशिव उवाच ।

कायानगरमध्यस्थो मारुतो रक्षपालकः ।

प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशाङ्गुलः ॥ २० ॥

श्रीसदाशिवजी बोले कि, अहो देवि ! कायारूपी नगर के बीच में टिका हुआ प्राण-वायु रक्षपाल ( चौकीदार ) कहलाता है जोकि प्रवेशमें दश अंगुल और निकलने में बारह अंगुलवाला कहा है ॥ २० ॥

गमने तु चतुर्विंशत्वेत्रवेदास्तु धावने ।

मैथुने पञ्चर्षष्टिश्च शयने च शताङ्गुलम् ॥ २१ ॥

चलने में चौबीस अङ्गुल, दौड़ने में वयार्लीस अङ्गुल, मैथुन में पैंसठ अङ्गुल और सोने में सौ अङ्गुलवाला कहा है ॥ २१ ॥

प्राणस्य तु गतिर्देवि स्वभावाद द्वादशाङ्गुलम् ।

भोजने वमने चैव गतिरथादशाङ्गुलम् ॥ २२ ॥

अहो देवि ! प्राणकी गति स्वभाव से बारह अङ्गुल की होती है और भोजन तथा वमन ( क्य ) करने के समय प्राणकी गति अट्टारह अङ्गुल की होती है ॥ २२ ॥

एकाङ्गुलं कृते न्यूने प्राणे निष्कामता मता ।

आनन्दस्तु द्वितीये स्यात्कविशक्तिस्तृतीयके ॥ २३ ॥

जिस समय प्राणवायु एक अङ्गुल कमती कीजाती है उस समय योगी को निष्कामता

प्राप्त होती है जब दो अङ्गुल कमती की जाती है तब आनन्द मिलता है और जब तीन अङ्गुल कमती की जाती है तब कविता की शक्ति आकर प्राप्त होती है ॥ २३ ॥

वाचा सिद्धिश्चतुर्थे च दूरदृष्टिस्तु पञ्चमे ।  
षष्ठे त्वाकाशगमनं चरणवेगश्च सप्तमे ॥ २४ ॥

जब चार अङ्गुल कम की जाती है तो वाणी की सिद्धि होती है पांच अङ्गुल कम की जाती है तो दूरदृष्टि छः अङ्गुल कम होने पर आकाश में चलना और सात अङ्गुल कम होजाने पर चरणवेग होजाता है ॥ २४ ॥

अष्टमे सिद्धयश्चैव नवमे निधयो नव ।  
दशमे दशमूर्तीश्च छाया नैकादशे भवेत् ॥ २५ ॥

आठ अङ्गुल कम करलेने पर आठों सिद्धियों, नव अङ्गुल कम हो ने पर नवनिधियों, दश अङ्गुल कम होजाने पर दश मूर्तियों ( अनेकरूपों ) की प्राप्ति होती है और यारह अङ्गुल कम होने पर छायाअभाव यानी अन्तर्धान की शक्ति प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

द्वादशे हंसचारश्च गङ्गामृतरसं पिबेत् ।  
आनखायं प्राणपूर्णे कस्य भक्ष्यं च भोजनम् ॥ २६ ॥

बारह अङ्गुल प्राणकी गति कमतीकर लेवे तो वह योगी हंस के समान चलता हुआ गङ्गामृतरस को पीता है और यदि शिखा से लेकर नखपर्यन्त प्राण पूर्ण होजावे तो किस का भक्ष्य व किसका भोजन है ॥ २६ ॥

एवं प्राणविधिः प्रोक्षः सर्वकार्यफलप्रदः ।  
जायते गुरुवाक्येन न विद्याशास्त्रकोटिभिः ॥ २७ ॥

इस प्रकार सब कार्यों के फलकी देनेवाली प्राणविधि कही है कि जिसका ज्ञान केवल गुरुके वाक्य सेही उपजता है करोड़ों विद्यायें व शास्त्रों से नहीं ॥ २७ ॥

प्रातश्चन्द्रो रविः सायं यदि दैवान्न लभ्यते ।  
मध्याह्नान्मध्यरात्राच्च परतस्तु प्रवर्तते ॥ २८ ॥

यदि प्रभात समय चन्द्रस्वर व सायं समय सूर्यस्वर दैवयोग से न मिलता हो तो दोपहर या आधी रात के उपरान्त मिलजाते हैं ॥ २८ ॥

दूरयुद्धे जर्यी चन्द्रः समासने दिवाकरः ।  
वहन्नाड्यागतः पादः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ २९ ॥

यदि दूरदेशी युद्ध में चन्द्रमा का स्वर होतो जयकारी होता है और यदि समीपी युद्ध में सूर्य का स्वर वहता हो तो जयकारी होता है और यदि वहती हुई नाड़ी में चलने के साथ पैर रक्खा जावे तो सारी सिद्धियाँ को देता है ॥ २६ ॥

**यात्रारम्भो विवाहश्च प्रवेशो नगरादिके ।**

**शुभकार्याणि सिध्यन्ति चन्द्रचारेषु सर्वदा ॥ ३० ॥**

यात्रारम्भ, विवाह, नगर व गृह आदिका प्रवेश और शुभ कार्य ये चन्द्रस्वर के चार में सदैव सिद्ध होते हैं ॥ ३० ॥

**अयनतिथिदिनेशैः स्वीयतत्त्वे च युक्ते**

**यदि वहति कदाचिहौवयोगेन पुंसाम् ।**

**स जयति रिपुसैन्यं स्तम्भमात्रस्वरेण**

**प्रभवति न च विघ्नं केशवस्यापि लोके ॥ ३१ ॥**

कदाचि दैवयोग से पुरुषों का अपना स्वर व तत्त्व अयन, तिथि और दिन के स्वामियों से युक्त होता हुआ यदि वहता हो तो वह स्वर के रोकनेमात्र सेही शत्रु सेना को जीत लेता है और वैकुण्ठलोक में भी उसको विनाश नहीं सताता है ॥ ३१ ॥

**रक्ष जीवं रक्ष जीवं जीवाङ्गे परिधाय च ।**

**जीवो जपति यो युद्धे जीवञ्चयति मेदिनीम् ॥ ३२ ॥**

अपने अङ्गपर वस्त्रों को पहिरकर जो जीवयुद्ध में ( जीवं रक्ष जीवं रक्ष ) ऐसा जपता है वह पुरुष जीता हुआ सारी पृथ्वी को जीतता है ॥ ३२ ॥

**भूमौ जले च कर्तव्यं गमनं शान्तिकर्मसु ।**

**वह्नौ वायौ प्रदीपेषु खे पुनर्नो भयेष्वपि ॥ ३३ ॥**

शान्तिकर्मों में पृथ्वीतत्त्व व जन्ततत्त्व में गमन करना चाहिये और उग्रकर्मों में तेज तत्त्व व वायुतत्त्व में गमन करना चाहिये और आकाशतत्त्व में पूर्वोक्त दोनों कर्मों के उपस्थित होने पर गमन नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥

**जीवेन शस्त्रं वधीयाज्ञीवेनैव विकाशयेत् ।**

**जीवेन प्रक्षिपेच्छस्त्रं युद्धे जयति सर्वदा ॥ ३४ ॥**

जीवस्वरसे शस्त्रको बांधे यानी जिस तरफ का स्वर चलता हो उसी तरफके हाथ से हथियार को धारे व जीवस्वर से ही हथियार को निकाले व जीवस्वरसे ही हथियार को फेंके तो वह योद्धा पुरुष लड़ाई में सदैव जयको पाता है ॥ ३४ ॥

आकृष्य प्राणपवनं समारोहेत वाहनम् ।

समुत्तरे पदं दद्यात्सर्वकार्याणि साधयेत् ॥ ३५ ॥

जो पुरुष प्राणवायु को खींचकर घोड़े आदि सवारी पर चढ़े और पवनके उत्तरपर रै को रकाब में देवे तो वह सब कामों को साधता है ॥ ३५ ॥

अपूर्णे शत्रुसामग्रीं पूर्णे वा स्ववलं तथा ।

कुरुते पूर्णतत्त्वस्थो जयत्येको वसुन्धराम् ॥ ३६ ॥

पूर्णतत्त्व में टिका हुआ जो पुरुष अपूर्ण स्वर में शत्रुकी सामग्री ( सेना ) और पूर्ण सर भर में अपनी सेना को स्थापित करता है वह अकेलाही पृथ्वी को जीतता है ॥ ३६ ॥

या नाडी वहते चाङ्गे तस्यामेवाधिदेवता ।

सम्मुखेऽपि दिशा तेषां सर्वकार्यफलप्रदा ॥ ३७ ॥

जिन बीरों के अङ्ग में जो नाड़ी वहती हो उसका अधिदेवता और उसकी दिशा साने हो तो उनको सर्वकार्यों का फल देती है ॥ ३७ ॥

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चायुद्धं समाचरेत् ।

सर्पमुद्रा कृता येन तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ ३८ ॥

पुरुष पहले मुद्रा करलेके पीछे से युद्ध को करे और जिसने सर्पमुद्राको किया है उसकी निस्सन्देह सिद्धि होती है ॥ ३८ ॥

चन्द्रप्रवाहेऽप्यथ सूर्यवाहे भटाः समायान्ति च योङ्कुकामाः ।

समीरणस्तत्त्वविदां प्रतीतो या शून्यता सा प्रतिकार्यनाशम् ॥ ३९ ॥

यदि चन्द्रमा का स्वर या सूर्य का स्वर बहता हो और तत्त्ववेत्ताओं को वायुतत्त्व भी नप्रतीत होता हो तो लड़नेवाले योद्धालोग भलीभांति आते हैं और यदि शून्यता प्रतीत होती हो यानी आकाशतत्त्व बहता हो तो प्रतिकार्यों को विनाश करता है ॥ ३९ ॥

यां दिशां वहते वायुर्युद्धं तदिशि दापयेत् ।

जयत्येव न संदेहः शकोऽपि यदि चाग्रतः ॥ ४० ॥

जिस दिशा में वायुतत्त्व बहता हो उसी दिशा में फौज को भेजे यदि इन्द्रभी आगे आजावे तो भी निस्सन्देह जीतता है ॥ ४० ॥

यत्र नाड्यां वहेद्यायुस्तदङ्गे प्राणमेव च ।

आकृष्य गच्छेत्कर्णान्तं जयत्येव पुरन्दरम् ॥ ४१ ॥

जिस नाड़ी में वायुतच्च बहता हो उसी नाड़ी की प्राणवायुको कर्णपर्यन्त खींचकर जो योद्धा युद्ध के लिये जाता है वह इन्द्रकोभी जीतसक्ता है ॥ ४१ ॥

**प्रतिपक्षप्रहारेभ्यः पूर्णाङ्गं योभिरक्षति ।**

**न तस्य रिपुभिः शक्तिर्विषये पि हन्यते ॥ ४२ ॥**

जो योद्धा वैरियोंके प्रहारों से अपने सारे अङ्गों की रक्षा करता है उसकी शक्तिको बलवान् वैरीभी नहीं विनाश करसकते हैं ॥ ४२ ॥

**अङ्गष्टतर्जनीवंशे पादाङ्गुष्ठे तथाध्वनिः ।**

**युद्धकाले च कर्तव्यो लक्षयोद्धाजयी भवेत् ॥ ४३ ॥**

अँगूठा व तर्जनी अँगुली की पोर तथा पैरके अँगूठे में जो योद्धा युद्धके समय ध्वनिको करे तो लाख योद्धाओं को जीतसक्ता है ॥ ४३ ॥

**निशाकरे रवौ चारे मध्ये यस्य सर्मीरणः ।**

**स्थितो रक्षेहिगन्तानि जयकाङ्क्षी गतः सदा ॥ ४४ ॥**

जिसके चन्द्रस्वर व सूर्यस्वर के चलने के बीच में वायुतच्च टिका हो तो युद्धमें गया हुआ जयाभिलाषी वीर दिग्न्तों की सदैव रक्षा करता है ॥ ४४ ॥

**श्वासप्रवेशकाले तु दूतो जल्पति वाञ्छितम् ।**

**तस्यार्थः सिद्धिमायाति निर्गमे नैव सुन्दरि ॥ ४५ ॥**

अहो सुन्दरि ! जिस मनुष्य के श्वास प्रवेश करने के समय दूत वाञ्छित कार्य को कहता है तो उसका अर्थ सिद्ध होजाता है और जब श्वास निकलने के समय वाञ्छित कार्य को कहता है तो उसका अर्थ सिद्ध नहीं होता है ॥ ४५ ॥

**लाभादीन्यपि कार्याणि पृष्ठानि कीर्तितानि च ।**

**जीवे विशति सिद्ध्यन्ति हानिर्निःसारणे भवेत् ॥ ४६ ॥**

जिस समय प्राणवायु प्रविष्ट होती है उस समय पूछे या कहे हुए लाभादिक कार्य सिद्ध होजाते हैं और जब प्राणवायु निकलती है उस समय पूर्वोक्त कार्यों का विनाश होजाता है ॥ ४६ ॥

**नैरै दक्षा स्वकीया च खिर्या वामा प्रशस्यते ।**

**कुम्भको युद्धकाले च तिस्रो नाड्यस्त्रयीगतिः ॥ ४७ ॥**

पुल्षणों की अपनी दाहनी नाड़ी व खिर्यों की वामनाड़ी और युद्ध में कुम्भकनाड़ी प्रशस्त होती है इस भांति तीन नाड़ियां हैं और उनकी तीजही गति हैं ॥ ४७ ॥

हकारस्य सकारस्व विना भेदं स्वरः कथम् ।  
सोहं हंसपदेनैव जीवो जयति सर्वदा ॥ ४८ ॥

हकार और सकार के भेद विना स्वरका ज्ञान कैसे हो सका है ? इससे जीव 'सोहं' और 'हंस' इन दो पदों सेही सदैव जयको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

शून्याङ्गं पूरितं कृत्वा जीवाङ्गे गोपयेजयम् ।  
जीवाङ्गे घातमाप्नोति शून्याङ्गं रक्षते सदा ॥ ४९ ॥

यदि शून्याङ्ग को पूरितकर जीवाङ्ग की रक्षा करे तो जयको पाता है और यदि जीवाङ्ग रक्षा न करे तो घात को पाता है इसलिये शून्याङ्ग की सदैव रक्षा करे ॥ ४९ ॥

वामे वा यदि वा दक्षे यदि पृच्छति पृच्छकः ।  
पूर्णे घातो न जायेत शून्ये घातं विनिर्दिशेत् ॥ ५० ॥

यदि बाईं या दाहिनी तरफ बैठा हुआ पूछनेवाला पूछे उस समय पूर्णस्वर वहता हो घात नहीं होगा और यदि शून्यस्वर प्रतीत हो तो घात ( नाश ) कहना चाहिये ॥ ५० ॥

भूतत्वेनोदरे घातः पदस्थानेऽम्बुना भवेत् ।  
ऊरुस्थानेऽग्नितत्वेन करस्थाने च वायुना ॥ ५१ ॥

पूछने के समय यदि पृथ्वीतत्त्व प्रतीत हो तो उदर में, जलतत्त्व हो तो पैरों में, अग्नि व हो तो जड़ाओं में घाव होगा और यदि वायुतत्त्व प्रतीत हो तो हाथों में हथियार गेगा ॥ ५१ ॥

शिरसि व्योमतत्त्वेन ज्ञातव्यो घातनिर्णयः ।  
एवं पञ्चविधो घातः स्वरशास्त्रे प्रकाशितः ॥ ५२ ॥

यदि आकाशतत्त्व प्रतीत हो तो शीश में घावका निर्णय जानना चाहिये इस भाँति स्वशास्त्र में पांच प्रकार का घाव प्रकाशित किया है ॥ ५२ ॥

युद्धकाले यदा चन्द्रः स्थायी जयति निश्चितम् ।

यदा सूर्यप्रवाहस्तु यायी विजयते तदा ॥ ५३ ॥

जयमध्ये तु सन्देहे नाडीमध्यं तु लक्षयेत् ।

सुषुम्नायां गते प्राणे समरे शत्रुसंकटम् ॥ ५४ ॥

युद्ध के समय जब चन्द्रमा का स्वर वहता हो तो स्थायी ( ठहरनेवाले ) का विजय निश्चय कर होता है और जब सूर्यस्वर का प्रवाह चलता हो तो यायो ( चढ़नेवाले )

का विजय होता है और यदि विजय में सन्देह हो तो नाड़ी का मध्य देखे यदि सुपुन्ना नाड़ी में प्राण चला गया हो तो संग्राम में शत्रुको संकट आनकर घेरलेता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

यस्या नाड्या भवेच्चारस्तां दिशं युधि संश्रयेत् ।

तदासौ जयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥

जिस नाड़ी का चलना हो उसी दिशा में जाकर संग्राम में खड़ा होवे तो वह लड़ाका वाला वीर विजय को पाता है इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥

यदि संग्रामकाले तु वामनाडी यदा वहेत् ।

स्थायिनो विजयं विद्याद्विपुवश्योदयोऽपि च ॥ ५५ ॥

यदि संग्राम के समय वामनाडी का स्वर बहता हो तो स्थायी का विजय जानना और यायी का शत्रुके वश में पड़ाने को समझना चाहिये ॥ ५५ ॥

यदि संग्रामकाले तु सूर्यस्तु व्यावृतो वहेत् ।

तदा यायिजयं विद्यात्सदेवासुरमानवे ॥ ५६ ॥

यदि लड़ाई लड़ने के समय सूर्य का स्वर लगातार बहता रहे तो देवता व राक्षस समेत मानवीयुद्ध में यायी का विजय जानना चाहिये ॥ ५६ ॥

रणे हरति शत्रुस्तं वामायां प्रविशेन्नरः ।

स्थानं विषुवचारेण जयः सूर्येण धावता ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य वामनाडी स्वर के चलते समय लड़ाई में जाता है तो उसको वैरी मार लेता है और यदि सुपुन्ना नाड़ी के बहते हुए लड़ाई में जावे तो स्थान मिलता यानी युद्ध नहीं होता है और यदि सूर्यस्वर के बहते धावा करे तो विजय को पाता है ॥ ५८ ॥

युद्धद्यकृते प्रश्ने पूर्णस्य प्रथमे जयः ।

रिक्ते चैव द्वितीयस्तु जयी भवति नान्यथा ॥ ५९ ॥

जिस समय युद्धविषयक दो प्रश्न किये जावें उस समय पूर्णस्वर बहता हो तो पहली लड़ाई में जय होती है और यदि रिक्तस्वर चलता हो तो दूसरी लड़ाई में विजय मिलती है अन्यथा नहीं होसका है ॥ ५९ ॥

पूर्णनाडीगतः पृष्ठे शून्याङ्गं च तदाग्रतः ।

शून्यस्थाने कृतः शत्रुर्धियते नात्र संशयः ॥ ६० ॥

यदि पूर्णनाडी में गया हो तो वैरी पीठ देकर भाग जाता है और यदि शून्यनाडी का अङ्ग हो तो शत्रु आगे आता है अथवा पूर्णस्वर बहता हो तो यायी पीछे से धावा करे

और जो शून्य नाड़ी हो तो आगे से धावा करे तो विजयी होता है क्योंकि शून्य स्थान में किया हुआ शब्द निःसन्देह मरजाता है ॥ ६० ॥

वामचारे समं नाम यस्य तस्य जयो भवेत् ।  
पृच्छको दक्षिणे भागे विजयी विषमाक्षरः ॥ ६१ ॥

वामस्वर के चलते समय वामभाग में टिका हुआ पृच्छक युद्ध का प्रश्न करे कि जिसका नाम समान अक्षरांवाला हो तो उसका विजय होता है और यदि दाहिने स्वर के चलते दाहिनी तरफ बैठा हुआ पूछनेवाला लड़ाई को पूछे कि जिसका नाम विषम अक्षरांवाला हो तो वह विजयी होता है और यदि समान अक्षरवाला नाम हो तो पराजय होजाता है ॥ ६१ ॥

यदा पृच्छति चन्द्रस्य तदा सन्धानमादिशेत् ।  
पृच्छेद्यदा तु सूर्यस्य तदा जानीहि विश्रहम् ॥ ६२ ॥

यदि चन्द्रमा के स्वर में पृच्छक पूछता है तो सन्धि ( मिलाप ) होजाने को कहना चाहिये और यदि सूर्यस्वर के चलते समय पूछे तो लड़ाई को जानो ॥ ६२ ॥

पार्थिवे च समं युद्धं सिद्धिर्भवति वारुणे ।  
युद्धेहि तेजसो भज्ञो मृत्युर्वायौ नभस्यपि ॥ ६३ ॥

यदि पृथ्वीतत्त्व में युद्ध का आरम्भ हो तो समान युद्ध होता है यानी लड़ाई में वरार्दी रहती है, यदि जलतत्त्व में युद्ध हो तो सिद्धि होती है यदि अग्नितत्त्व में युद्ध हो तो भज्ञ होता है और यदि वायु व आकाशतत्त्व में लड़ाई हो तो मौत होजाती है ॥ ६३ ॥

निमित्तकप्रमादाद्वा यदा न ज्ञायतेऽनिलः ।  
पृच्छाकाले तदा कुर्यादिदं यतेन बुद्धिमान् ॥ ६४ ॥

यदि किसी कारण या असावधानी से प्रश्न के समय प्राणवायु नहीं जानाजाता हो तो बुद्धिमान् मनुष्यको यत्र के साथ यह काम करना चाहिये ॥ ६४ ॥

निश्चलां धारणां कृत्वा पुष्पं हस्तान्निपातयेत् ।  
पूर्णाङ्गे पुष्पपतनं शून्यं वा तत्परं भवेत् ॥ ६५ ॥

निश्चल धारणा को कर फूलको हाथ से गिरावे यदि पूर्णाङ्ग में फूलका पतन हो तो कार्य पूर्ण होजाता है और यदि शून्याङ्ग में फूल का गिरना हो तो कार्य निष्फलता को पाता है ॥ ६५ ॥

तिष्ठन्नपविशन्नापि प्राणमार्कर्षयन्निजम् ।

मनोभङ्गमकुर्वाणः सर्वकार्येषु जीवति ॥ ६६ ॥

जो मनुष्य खड़ा होता या बैठता या मन को नहीं विगड़ता हुआ अपनी प्राणवायु को खींचता है तो वह समस्त कार्यों में जीता है यानी उसके सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होजाते हैं ॥ ६६ ॥

न कालो विविधं घोरं न शङ्खं न च पञ्चगाः ।

न शत्रुव्याधिचौरायाः शून्यस्था नाशितुं क्षमाः ॥ ६७ ॥

काल, अनेक भयकारी हथियार, सांप, वैरी, व्याधि (रोग) और चौर आदि ये शून्यस्थान में टिकेहुए विनाश करने को समर्थ नहीं होसके हैं ॥ ६७ ॥

जीवेन स्थापयेद्यायुं जीवेनारम्भयेत्पुनः ।

जीवेन क्रीडते नित्यं द्यूते जयति सर्वथा ॥ ६८ ॥

जीवस्वरसे वायुको स्थापित करे व जीवसेही आरम्भ करे व जीवस्वरसेही इमेशा जुआ खेलता रहे तो सर्वथा जुआ में जय होती है ॥ ६८ ॥

स्वरज्ञानिबलादग्ने निष्फलं कोटिधा भवेत् ।

इहलोके परत्रापि स्वरज्ञानी बली सदा ॥ ६९ ॥

स्वरज्ञानी के बलके सामने करोड़ों प्रकारका बल निष्फल होजाता है क्योंकि इस लोक या परलोक में स्वरज्ञानीही सदैव बलवान् होता है ॥ ६९ ॥

दशशतायुतं लक्षं देशाधिपबलं क्वचित् ।

शतक्रतुसुरेन्द्राणां बलं कोटिगुणं भवेत् ॥ ७० ॥

कितेक मनुष्य को दश, कितेक को सौ, कितेक को दश हजार, कितेक को लाख, कितेक को देशाधिपत्य का बल होता है इससे इन्द्र और ब्रह्मा आदि देवताओं का बल कोटिगुना होता है ऐसेही सब बलों में से स्वरका बल कोटिगुना कहा है ॥ ७० ॥

देव्युवाच ।

परस्परं मनुष्याणां युद्धे प्रोक्षो जयस्त्वया ।

यमयुद्धे समुत्पन्ने मनुष्याणां कथं जयः ॥ ७१ ॥

श्रीदेवीजी बोलीं कि मनुष्यों के परस्पर युद्ध में आपने जय को कहा जब यमराज के साथ युद्ध हो तब मनुष्यों की जय कैसे होसकी है ॥ ७१ ॥

ईश्वर उवाच ।

ध्यायेदेवं स्थिरो जीवं जुहुयाज्जीवसंगमै ।

इष्टसिद्धिर्भवेत्स्य महालाभो जयस्तथा ॥ ७२ ॥

श्रीसदाशिवजी बोले कि, अहो प्राणप्रिये ! जो मनुष्य स्थिर होकर इष्टदेवका ध्यान करे और जीवसंगम ( नाभिचक्र ) में जीव ( प्राणवायु ) का होम करे तो उस मनुष्य की इष्टसिद्धि व महालाभ होकर जय प्राप्त होती है ॥ ७२ ॥

निराकारात्समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत् ।

तत्साकारं निराकारं ज्ञाने भवति तत्क्षणात् ॥ ७३ ॥

निराकारसे सारा जगत् साकार होकर उपजा है और जब ज्ञान होता है तब वह साकार ( जगत् ) उसीक्षण निराकार होजाता है ॥ ७३ ॥

देव्युवाच ।

नरयुद्धं यमयुद्धं त्वया प्रोक्तं महेश्वर ।

इदानीं देवदेवानां वशीकरणकं वद ॥ ७४ ॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे देवाधिदेव महेश्वरजी ! नरयुद्ध और यमयुद्ध को तो आपने कहा अब वशीकरण को भी बतलाइये ॥ ७४ ॥

ईश्वर उवाच ।

चन्द्रं सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीवमण्डले ।

आजन्मवशगा रामा कथितेयं तपोधनैः ॥ ७५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि, खी के चन्द्रस्वर को सूर्यस्वर से खींचकर जीवण्डल में स्थापित करे तो वह रमणी जन्मपर्यन्त वश में रहती है यह तपस्त्रियोंने कहा है ॥ ७५ ॥

जीवेन गृह्यते जीवो जीवो जीवस्य दीयते ।

जीवस्थाने गतो जीवो बाला जीवान्तकारकः ॥ ७६ ॥

पुरुष जीवस्वर से खी के जीवस्वर को ग्रहण करे और रमणी के जीवस्वर में अपना जीवस्वर दे इस भाँति जीवके स्थान में गया हुआ जीव जिसका हो वह नर जन्मपर्यन्त रमणी के वश में रहता है ॥ ७६ ॥

रात्र्यन्तयामवेलायां प्रसुसे कामिनीजने ।

ब्रह्मजीवं पिबेद्यस्तु बालाप्राणहरो नरः ॥ ७७ ॥

रात्रिके पिछले प्रहर के समय कामिनीजनके सोते हुए जो पुरुष ब्रह्मजीव ( चन्द्रस्वर ) को पीता है वह मनुष्य खियों के प्राणों को वश में करता है ॥ ७७ ॥

अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन्काले गते सति ।  
तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी ॥ ७८ ॥

उस समय के व्यतीत होजाने पर अष्टाक्षर मन्त्र को जप कर जो पुरुष अपना चन्द्रस्वर  
खी को देता है तो वह कामिनी उसीक्षण मोह को प्राप्त होती है ॥ ७८ ॥

शयने वा प्रसङ्गे वा युवत्यालिङ्गनेऽपि वा ।  
यः सूर्येण पिबेच्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः ॥ ७९ ॥

शयन करने के समय या खीप्रसंग या युवती के आलिङ्गन में भी जो पुरुष सूर्यस्वर  
से चन्द्रस्वर को पीता है वह कामदेव के समान मोह करनेवाला होता है ॥ ७९ ॥

शिंव आलिङ्गन्ते शक्त्या प्रसङ्गे दक्षिणेऽपि वा ।  
तत्क्षणादापयेद्यस्तु मोहयेत्कामिनीशतम् ॥ ८० ॥

चन्द्रस्वर से सूर्यस्वर आलिङ्गन किया जाता है इसलिये दक्षिणावर्त प्रसंग के होते  
हुए जो पुरुष कामिनी के चन्द्रस्वर में अपने सूर्यस्वर को देता है तो वह सैकड़ों कामि-  
नियों को मोहित कर सकता है ॥ ८० ॥

सप्तनवत्रयः पञ्चवारान्संगस्तु सूर्यभे ।  
चन्द्रे द्वितुर्यषद् कृत्वा वश्या भवति कामिनी ॥ ८१ ॥

खीके चन्द्रस्वरको अपने सूर्यस्वर में देने के बाद सात ७ नव ६ तीन ३ या पांचवार  
संग होजावे अथवा खीके चन्द्रस्वरमें अपना सूर्यस्वर देकर दो २ चार ४ या छः ६ बार  
मिलजावे तो वह कामिनी वशमें होती है ॥ ८१ ॥

सूर्यचन्द्रौ समाकृष्य सर्पकान्त्याधरोष्योः ।

महापद्मे मुखं स्पृष्ट्वा वारं वारमिदं चरेत् ॥ ८२ ॥

अपने सूर्य व चन्द्रस्वर को सर्प की गति से खींच कर अधरोष्टों पर खी के मुखमें अपना  
मुख लगाकर वारम्बार पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्र और सूर्यस्वरका मेल करता रहे ॥ ८२ ॥

आप्राणमिति पद्मस्य यावन्निदावशंगता ।

पश्चाज्जागर्तिवेलायां चोष्यते गलचक्षुषी ॥ ८३ ॥

जब तक खी निद्रा के वश में रहे तबतक पूर्वोक्तप्रकार से रमणी के मुखपद का पान  
करे पीछे जागने के समय गला व नेत्रों का चुम्बन करे ॥ ८३ ॥

१ कामदेवः २ सूर्यस्वरः ३ चन्द्रस्वरेण ॥

अनेन विधिना कामी वशयेत्सर्वकामिनीः ।

इदं न वाच्यमन्यस्मिन्नित्याज्ञा पारमेश्वरी ॥ ८४ ॥

कामीपुरुष इसी विधि से सब कामिनियों को वश में करता है यह वशीकरण ज्ञान अन्यलम्पट पुरुष से नहीं कहना चाहिये यह परमेश्वर की आज्ञा है ॥ ८४ ॥

इति वशीकरणम् ॥

अथ गर्भप्रकरणम् ।

ऋतुकालभवा नारी पञ्चमेऽहि यदा भवेत् ।

सूर्याचन्द्रमसोर्योगे सेवनात्पुत्रसंभवः ॥ ८५ ॥

ऋतुकाल के अनन्तर जब स्त्री को पांचवां दिन हो और पुरुष का सूर्यस्वर व स्त्री का चन्द्रस्वर बहता हो उस समय सेवन करने से पुत्रका संभव होता है ॥ ८५ ॥

शङ्खवल्लीगवां दुर्घे पृथ्व्यापो वहते यदा ।

भर्तुरेव वदेद्वाक्यं दर्पं देहि त्रिभिर्वचः ॥ ८६ ॥

जिस समय पृथ्वी और जलतत्त्व वहते हों उस समय स्त्री को गौके दूध में शङ्खवल्ली को खिलावे फिर रमणी अपने स्वामी से तीन बार भोग करने की प्रार्थना करे ॥ ८६ ॥

ऋतुस्नाता पिबेन्नारी ऋतुदानन्तु योजयेत् ।

रूपलावण्यसम्पन्नो नरसिंहः प्रसूयते ॥ ८७ ॥

जब ऋतुस्नाता रमणी उक्त औषधका पान करलेवे उस समय पुरुष ऋतुदान को देवे तो रूप व सुन्दरता से संपन्न होता हुआ नरसिंहरूप होकर बालक पैदा होता है ॥ ८७ ॥

सुषुम्ना सूर्यवाहेन ऋतुदानं तु योजयेत् ।

अङ्गहीनः पुमान्यस्तु जायते त्रासविग्रहः ॥ ८८ ॥

विषमाङ्के दिवारात्रौ विषमाङ्के दिनाधिपः ।

चन्द्रनेत्राग्नितत्त्वेषु बन्ध्यापुत्रत्वमाप्नुयात् ॥ ८९ ॥

जो मनुष्य सूर्यस्वर के प्रवाह के साथ सुषुम्ना स्वर के बहने के समय ऋतुदान को देता है तो उसके अङ्गहीन व कुरुप होकर बालक उपजता है व ऋतु के अनन्तर विषमाङ्कवाले दिन-रात्रि हों व विषमाङ्क में ही सूर्यस्वर बहता हो और पृथ्वी, जल व अग्नितत्त्व वहते हों उस समय बन्ध्या रमणी भी यदि गर्भको धारे तो पुत्रको पाती है ॥ ८८ । ८९ ॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां स्त्रीणां चैव सुधाकरः ।

उभयोः संगमे प्राप्ते वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥ ६० ॥

यदि ऋतुकालके आरम्भ में पुरुषों का सूर्यस्वर चलता हो व ख्तियों का चन्द्रस्वर बहता हो उस समय दोनों का संगम प्राप्त होजावे तो वन्ध्या भी पुत्रको पाती है ॥ ६० ॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां शुक्रान्ते च सुधाकरः ।

अनेन क्रमयोगेन नादते देवि दारकम् ॥ ६१ ॥

यदि घोग के आरम्भ में पुरुषों का सूर्यस्वर चले और वीर्यपात के समय चन्द्रस्वर बहने लगे तो है देवि ! इस क्रमयोग से ख्ती गर्भको नहीं धारती है ॥ ६१ ॥

चन्द्रनाडी यदा प्रश्ने गर्भे कन्या तदा भवेत् ।

सूर्यो भवेत्तदा पुत्रो द्वयोर्गर्भो विहन्यते ॥ ६२ ॥

यदि गर्भिणी के प्रश्न समय चन्द्रनाडी चले तो गर्भ में कन्या उपजती है और यदि सूर्यस्वर वहे तो पुत्र होता है और यदि दोनों चलते हों तो गर्भही विनष्ट होजाता है ॥ ६२ ॥

पृथ्वी पुत्री जले पुत्रः कन्यका तु प्रभञ्जने ।

तेजसि गर्भपातः स्यान्नभस्यपि नपुंसकः ॥ ६३ ॥

यदि प्रश्न के समय पृथ्वीतत्त्व हो तो पुत्री, जलतत्त्व हो तो पुत्र, वायुतत्त्व हो तो कन्या, तेजतत्त्व हो तो गर्भ का पात और यदि आकाशतत्त्व हो तो नपुंसक पैदा होता है ॥ ६३ ॥

चन्द्रे ख्ती पुरुषः सूर्यो मध्यमार्गे नपुंसकः ।

गर्भप्रश्ने यदा दूतः पूर्णे पुत्रः प्रजायते ॥ ६४ ॥

यदि गर्भप्रश्न के समय चन्द्रस्वर चलता हो तो पुत्री, सूर्यस्वर चलता हो तो पुत्र, सुषुम्ना स्वर हो तो नपुंसक होता है और यदि पूर्णस्वर में दूत प्रश्न करे तो पुत्र पैदा होता है ॥ ६४ ॥

शून्ये शून्यं युगे युगमं गर्भपातश्च संक्रमे ।

तत्त्ववित्स विजानीयात्कथितं तजु सुन्दरि ॥ ६५ ॥

अहो सुन्दरि ! पूछनेवाला शून्यस्वर में प्रश्न करे तो शून्य, दोनों स्वर में जो पूछे तो जोड़ा ( कन्या, पुत्र ) पैदा होता है और यदि स्वरों का संक्रम या सुषुम्ना हो तो गर्भ का पात तत्त्ववेत्ताओं को जानना चाहिये ॥ ६५ ॥

गर्भाधानं मारुते स्याच दुःखी दिक्षु ख्यातो वारुणे सौख्ययुक्तः ।

गर्भसावः स्वत्पज्ञीवश्च वह्नौ भोगी भव्यः पार्थिवेनार्थयुक्तः ॥ ६६ ॥

यदि वायुतत्त्व में गर्भाधान हो तो दुःखी, जलतत्त्व में हो तो दिशाओं में विरुद्ध्यात होकर सुखी, अग्नितत्त्व में हो तो गर्भपात या अल्पजीवी होता है और यदि पृथ्वीतत्त्व हो तो भोगी व धनी होकर भाग्यवान् पुत्र पैदा होता है ॥ ६६ ॥

धनवान्सौख्ययुक्तश्च भोगवानर्थसंस्थितिः ।

स्यान्नित्यं वारुणे तत्त्वे व्योम्नि गर्भो विनश्यति ॥ ६७ ॥

यदि जलतत्त्व में गर्भाधान हो तो धनवान्, सौख्यवान्, भोगवान् कि जिसके समीप सदैव धन रहता है ऐसा पुत्र पैदा होता है और यदि आकाशतत्त्व में गर्भाधान हो तो गर्भही विनष्ट होजाता है ॥ ६७ ॥

माहेन्द्रे सुमुतोत्पत्तिर्वारुणे दुहिता भवेत् ।

शेषेषु गर्भहानिः स्याज्ञातमात्रस्य वा मृतिः ॥ ६८ ॥

यदि पृथ्वीतत्त्व में गर्भाधान होवे तो पुत्रकी उत्पत्ति होती है यदि जलतत्त्व में गर्भ रहे तो पुत्री होती है और यदि शेषतत्त्वों में गर्भ रहे तो उसकी हानि होजाती है या पैदा होते ही मरजाता है ॥ ६८ ॥

रविमध्यगतश्चन्द्रश्चन्द्रमध्यगतो रविः ।

ज्ञातव्यं गुरुतः शीघ्रं न वेदैः शास्त्रकोटिभिः ॥ ६९ ॥

सूर्यस्वर के मध्य में चन्द्रस्वर की व चन्द्रस्वर के वीच में सूर्यस्वर की गति गुरु से शीघ्र जानना चाहिये क्योंकि वह गति वेदों व करोड़ों शास्त्रों से भी नहीं जानी जाती है ॥ ६९ ॥

चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रातस्तत्त्वविभेदतः ।

पश्येद्विचक्षणे योगी दक्षिणे चोत्तरायणे ॥ ३०० ॥

चैत्रमास शुक्लपक्ष प्रतिपदा को प्रभात के समय तत्त्वों के विचार से दक्षिणायन और उत्तरायण का फल चतुरश्योगी को देखना चाहिये यानी तत्त्वों के विभेद से सालभरे का फल बता देना चाहिये ॥ ३०० ॥

चन्द्रोदयस्य वेलायां वहमानोऽथ तत्त्वतः ।

पृथिव्यापस्तथा वायुः सुभिक्षं सर्वसस्यजम् ॥ १ ॥

चन्द्रस्वर के उदय के समय यदि पृथ्वी, जल और वायुतत्त्व बहता हो तो सब खेती यारी के लिये सुभिक्ष होता है ॥ १ ॥

तेजोव्योम्नोर्भयं घोरं दुर्भिक्षं कालतत्त्वतः ।

एवं तत्त्वफलं ज्ञेयं वर्षे मासे दिनेष्वपि ॥ २ ॥

यदि चन्द्रोदय के समय अग्नि और आकाशतत्त्व बहता हो तो घोरभय और अकाल पड़ता है इस भाँति समय के तत्त्वानुसार वर्ष, मास और दिनों में भी समस्त तत्त्वों का फल जानना चाहिये ॥ २ ॥

मध्यमा भवति ब्रूरा दुष्टा सर्वेषु कर्मसु ।

देशभज्ञमहारोगक्लेशकष्टादिदुःखदा ॥ ३ ॥

मध्यमा ( सुषुप्ता ) नाड़ी कूर व सब कर्मों में बुरी होकर देशभज्ञ, महारोग, क्लेश और कष्टआदि दुःखों की देनेवाली होती है ॥ ३ ॥

मेषसंक्रान्तिवेलायां स्वरभेदं विचारयेत् ।

सँव्वत्सरफलं ब्रयाल्पोकानां तत्त्वचिन्तकः ॥ ४ ॥

यदि मेषकी संक्रान्ति के समय स्वरभेद का विचार करे तो तत्त्वचिन्तक योगीजन लोगों से साल भरे का फल कहसङ्गा है ॥ ४ ॥

पृथिव्यादिकतत्वेन दिनमासाब्दजं फलम् ।

शोभनं च यथा दुष्टं व्योममारुतवह्निभिः ॥ ५ ॥

मेषसंक्रान्ति के समय पृथ्वीआदिक तत्त्वों से दिन, मास और वर्ष का फल भला जानना चाहिये और आकाश, वायु व अग्नितत्त्वों से निन्दित फल कहना चाहिये ॥ ५ ॥

सुभिक्षं राष्ट्रवृद्धिः स्याद्बहुसस्या वसुन्धरा ।

बहुवृष्टिस्तथा सौख्यं पृथ्वीतत्त्वं वहेद्यदि ॥ ६ ॥

यदि मेषसंक्रान्ति के दिन पृथ्वीतत्त्व बहता हो तो सुभिक्ष, देशवृद्धि, अधिक धान्य वाली पृथ्वी, घनी वृष्टि और बड़ा सुख होता है ॥ ६ ॥

आतिवृष्टिः सुभिक्षं स्यादारोग्यं सौख्यमेव च ।

बहुसस्या तथा पृथ्वी असत्त्वं वै वहेद्यदि ॥ ७ ॥

यदि जलतत्त्व बहता हो तो महावृष्टि, सुकाल, आरोग्य, सौख्य और पृथ्वी अधिक धान्यवाली होती है ॥ ७ ॥

दुर्भिक्षं राष्ट्रभज्ञः स्यादुत्पत्तिश्च विनश्यति ।

अल्पादल्पतरा वृष्टिरग्नितत्त्वं वहेद्यदि ॥ ८ ॥

यदि मेषसंक्रान्ति के दिवस अग्नितत्त्व बहता हो तो अकाल पड़ता है, देशका भज्ञ होजाता है, उपज की क्षय होती है और वर्षा बहुत ही कम होती है ॥ ८ ॥

उत्पातोपद्रवा भीतिस्त्वा वृद्धिः स्युरीतयः ।

मेषसंक्रान्तिवेलायां वायुतत्त्वं वहेद्यदि ॥ ६ ॥

यदि मेष की संक्रान्ति के समय वायुतत्त्व वहता हो तो उत्पात, उपद्रव, भीति, थोड़ी सी वृद्धि और ईतियां होती हैं ॥ ६ ॥

मेषसंक्रान्तिवेलायां व्योमतत्त्वं वहेद्यदि ।

तत्रापि शून्यता ज्ञेया सस्यादीनां सुखस्य च ॥ १० ॥

यदि मेषकी संक्रान्ति के समय आकाशतत्त्व वहता हो तो धान्य आदि और सुखकी गून्यता जानना चाहिये ॥ १० ॥

पूर्णप्रवेशने श्वासे सस्यं तत्त्वेन सिद्ध्यति ।

सूर्यचन्द्रेऽन्यथाभूते संग्रहः सर्वसिद्धिदः ॥ ११ ॥

यदि श्वासका पूर्णप्रवेश होजावे तो तत्त्व से धान्य की सिद्धि होती है और यदि तत्त्वो-दय के समय सूर्य व चन्द्रस्वर विपरीत होवें यानी चन्द्र के योगमें सूर्यस्वर व सूर्य के योग में चन्द्रस्वर वहता हो तो अन्न का संग्रह सर्वसिद्धिदायक होता है ॥ ११ ॥

विषमे वह्नितत्त्वं स्याज्ञायते केवलं नभः ।

तत्कुर्याद्वस्तुसंश्राहो द्विमासे च महर्घता ॥ १२ ॥

यदि दक्षिणस्वर में अग्नितत्त्व या केवल आकाशतत्त्व ही जाना जाता हो तो वस्तुओं का संग्रह करे क्योंकि दो महीने में महँगी पड़ेगी उससे बड़ा लाभ होगा ॥ १२ ॥

स्वौ संक्रमते नाडी चन्द्रमन्ते प्रसर्पिता ।

खानिले वह्नियोगेन रौरवं जगतीतले ॥ १३ ॥

यदि रात्रि के समय सूर्य की नाड़ी वहती हो और प्रभात के समय चन्द्रमा की नाड़ी चलती हो और उसी समय आकाश, वायु और अग्नितत्त्व का योग हो तो पृथ्वीतल में बड़ा अनर्थ होता है ॥ १३ ॥

इति संवत्सरप्रकरणम् ॥

अथ योगप्रकरणम् ।

महीतत्त्वे स्वरोगश्च जले च जलमातृतः ।

तेजसि खेतवायीस्थशाकिनीपितृदोषतः ॥ १४ ॥

यदि रोगप्रश्न के समय पृथ्वीतत्त्व वहता हो तो अपने पापसे रोग होता है और यदि जलतत्त्व चलता हो तो जलमातुकाओं के दोष से वाधा होती है और यदि अग्नितत्त्व वहता हो तो खेटवाणी में टिकी शाकिनी या पितरों के दोष से पीड़ा उपजती है ॥ १४ ॥

**आदौ शून्यगतो दूतः पश्चात्पूर्णे विशेष्यदि ।  
मूर्च्छितोऽपि ध्रुवं जीवेयदर्थं प्रतिपृच्छति ॥ १५ ॥**

यदि प्रश्न करनेवाला दूत पहले शून्य अङ्गकी तरफ आया हो व पीछे से पूर्णाङ्ग की तरफ बैठजावे तो जिस रोगी के लिये पूछता है वह मूर्च्छित भी होगया हो तो भी निश्चय से जीता है ॥ १५ ॥

**यस्मिन्नङ्गे स्थितो जीवस्तत्रस्थः परिपृच्छति ।  
तदा जीवति जीवोसौ यदि रोगैरुपद्गुतः ॥ १६ ॥**

जिस अङ्ग में प्राणवायु टिका हो उसी तरफ बैठा हुआ दूत जिस रोगी को पूछता है वह यदि रोगों से घिर भी गया हो तो भी जीता है ॥ १६ ॥

**दक्षिणेन यदा वायुर्दूतो रौद्राक्षरो वदेत् ।  
तदा जीवति जीवोऽसौ चन्द्रे समफलं भवेत् ॥ १७ ॥**

यदि दाहिने स्वर से वायु वहता हो उसी समय आया हुआ दूत मुख से भयानक वचनों को बोले तो वह जीव जीता है और यदि चन्द्रस्वर चलता हो तो समान फल होता है ॥ १७ ॥

**जीवाकारं च वा धृत्वा जीवाकारं विलोक्य च ।  
जीवस्थो जीवितप्रश्ने तस्य स्याजीवितं फलय् ॥ १८ ॥**

जीवाकार को धारकर और जीवाकार को देखकर जिस तरफ प्राणवायु वहता हो उस तरफ बैठा हुआ दूत जीवित का प्रश्न करे तो उस रोगी का जीवित फल होता है ॥ १८ ॥

**वामचारे तथा दक्षप्रवेशे यत्र वाहने ।**

**तत्रस्थः पृच्छते दूतस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ १९ ॥**

वायनाडी ( इडा ) तथा दक्षिणाडी ( पिङ्गला ) इन दोनों के चलने या प्रवेश करने के समय जिस तरफ का स्वर वहता हो उसी तरफ बैठा हुआ दूत जिस रोगी को पूछता है उसकी निस्सन्देह सिद्धि होती है ॥ १९ ॥

**प्रश्ने चाधस्थितो जीवो नूनं जीवोहि जीवति ।**

**ऊर्ध्वचारस्थितो जीवो जीवो याति यमालयम् ॥ २० ॥**

यदि प्रश्न के समय दूत अधोभाग में बैठा हो तो वह रोगी निश्चय कर जीता है और दि दूत ऊपरले भाग में टिका हो तो जीव यमालय को जाता है ॥ २० ॥

**विषमाक्षरयुते प्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि ।**

**विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्योदये सति ॥ २१ ॥**

यदि विषम नाड़ी (सुखुम्बा) का उदय हो और प्रश्नकर्ता रिक्तनाड़ी में प्रश्न करे कि जैसके अक्षर विषम हों तो विपरीत फल जानना चाहिये ॥ २१ ॥

**चन्द्रस्थाने स्थितो जीवः सूर्यस्थाने तु पृच्छकः ।**

**तदा प्राणवियुक्तोसौ यदि वैद्यशतैर्वृतः ॥ २२ ॥**

यदि प्राणवायु चन्द्रमाके चारमें टिकी हो और पूछनेवाला सूर्य के चार में बैठा हो वह रोगी चाहे सैकड़ों वैद्यों से धिरा भी हो तो भी मरजाता है ॥ २२ ॥

**पिङ्गलायां स्थितो जीवो वामे दूतस्तु पृच्छति ।**

**तदापि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः ॥ २३ ॥**

यदि प्राणवायु पिङ्गला नाड़ी में टिकी हो और दूत वामभाग में पूछता हो तो भी रोगी मरजाता है चाहे महादेव भी रक्षा क्यों न करें ॥ २३ ॥

**एकस्य भूतस्य विपर्ययेण रोगाभिभूतिर्भवतीह पुंसाम् ।**

**तयोर्द्वयोर्बन्धुमुहृद्विपत्तिः पक्षद्वये व्यत्ययतो मृतिः स्यात् ॥ २४ ॥**

एक तत्त्व के विपरीत होने से पुरुषों को रोग पीड़ित करते हैं और दो तत्त्वों के विपरीत होनेसे बन्धुओं व मित्रों से विपदा आकर घेरती है और यदि मासपर्यन्त व्यत्यय वलाजावे तो मरण ही होजाता है ॥ २४ ॥

**इति रोगप्रकरणम् ॥**

**अथ कालप्रकरणम् ।**

**मासादौ चैव पक्षादौ वत्सरादौ यथाक्रमम् ।**

**क्षयकालं पैरीक्षेत वायुचारवशात्सुधीः ॥ २५ ॥**

मास, पक्ष और वर्ष इनके आदि में क्रमसे विद्वान् योगी वायुचार के वश से मरण समय की परीक्षा करे ॥ २५ ॥

**पञ्चभूतात्मकं दीपं शिवस्नेहेन सिञ्चितम् ।**

१ परितः पश्येत् २ सुशुध्यायति- शोभनाधीर्यस्येति वा ॥

रक्षयेत्सूर्यवातेन प्राणी जीवः स्थिरो भवेत् ॥ २६ ॥

शिवरूप तैलसे सीचेहुए पञ्चभूतवाले दीप ( देह ) को जो प्राणी सूर्यरूप वायुसे रक्षा करता है उसका जीव स्थिर बनारहता है ॥ २६ ॥

मारुतं बन्धयित्वा तु सूर्यं बन्धयते यदि ।

अभ्यासाज्जीवते जीवः सूर्यकालेऽपि वञ्चिते ॥ २७ ॥

जो मनुष्य प्राणवायु को बांध कर दिन भर सूर्य स्वर को बांधे रहता है इस भाँति जब अभ्यास के बल से सूर्यकाल भी वञ्चित होजाता है तब जीव जीवित रहता है ॥ २७ ॥

गगनात्स्वते चन्द्रः कायपद्मानि सिञ्चयेत् ।

कर्मयोगात्सदाभ्यासैरमरः शशिसंश्रयात् ॥ २८ ॥

आकाश से भिरता हुआ चन्द्रमा कायारूप पद्मों को सींचता है इस प्रकार योगी चन्द्रमा का आश्रय लेने से सदा अभ्यास के द्वारा अपर होजाता है ॥ २८ ॥

शशाङ्कं वारयेद्रात्रौ दिवा वार्यो दिवाकरः ।

इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः ॥ २९ ॥

जो रात्रिमें चन्द्रस्वर और दिनमें सूर्यस्वर को बराता है इस भाँति सदैव अभ्यास में लगारहता है वह निस्सन्देह योगी कहलाता है ॥ २९ ॥

अहोरात्रे यदैकत्र वहते यस्य मारुतः ।

तदा तस्य भवेन्मृत्युः संपूर्णे वत्सस्त्रये ॥ ३० ॥

जिसका प्राणवायु दिन रात एकही स्थानमें वहता रहे तो उस मनुष्य की पूरे तीन वर्षमें ही मृत्यु होजाती है ॥ ३० ॥

अहोरात्रद्यं यस्य पिङ्गलायां सदागंतिः ।

तस्य वर्षद्यं प्रोक्तं जीवितं तत्त्ववेदिभिः ॥ ३१ ॥

जिसका प्राणवायु दो दिन रात लगातार पिङ्गलानाड़ी मेंही वहता रहे उसका जीवन तत्त्ववेत्ताओंने दो वर्षका कहा है ॥ ३१ ॥

त्रिरात्रे वहते यस्य वायुरेकपुटे स्थितः ।

तदा संवत्सरायुस्तं प्रवदनित मनीषिणः ॥ ३२ ॥

१ “श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागतिः” ( इत्यमरः ) ॥

जिस मनुष्यका प्राणवायु एकही नासापुट में तीनरात पर्यन्त वहतारहे तो परिष्टलोग  
उसकी आयुर्दाय सालभरे की कहते हैं ॥ ३२ ॥

रात्रौ चन्द्रो दिवामूर्यो वहेद्यस्य लिरन्तरम् ।

जानीयात्तस्य वै मृत्युः परमासाभ्यन्तरे भवेत् ॥ ३३ ॥

जिस मनुष्य का रात्रि में चन्द्रस्वर और दिन में सूर्यस्वर लगातार वहता रहे  
उसकी मृत्यु छः महीना के भीतर ही होजाती है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

लक्ष्ये लक्षितलक्षणेन सलिले भानुर्यदा दृश्यते

क्षीणो दक्षिणपश्चिमोत्तरपुरः पदत्रिद्विमासैकतः ।

मध्यं खिद्विदं भवेद्यशादिनं धूमाकुलं तद्विने

सर्वज्ञैरपि भाषितं सुनिवैरायुः प्रमाणं स्फुटम् ॥ ३४ ॥

लखे हुए लक्षणवाले पुरुष को लक्ष्यरूप जलमें जब सूर्य का पण्डल दक्षिण,  
श्चिम, उत्तर व पूर्व की तरफ कठा हुआ देख पड़ता हो तो क्रमसे छः तीन दो और  
एक मास की आयुर्दाय समझनी चाहिये यानी दक्षिण में कठा सा दीखे तो छः मास,  
श्चिम में तीन मास, उत्तर में दो मास और पूर्व में एक मास की आयु कहना उचित  
। यदि पण्डल के मध्य में वेद दीखे तो दरादिन की आयु जानना चाहिये और  
दि पूर्णपण्डल में ध्रुवां सा प्रतीत होता हो तो उसी दिन मृत्यु होती है यह सर्वज्ञाता  
निवर्णों ने आयुर्दाय का प्रकट प्रमाण कहा है ॥ ३४ ॥

दूतः कृष्णकषायकृष्णवसनो दन्तक्षतो मुरिष्ट-

स्तैलाभ्यक्षशरीरज्जुककरो दीनश्च पूर्णोत्तरः ।

भस्माङ्गारकपालपाशमुशलीमूर्यास्तमायाति यः

काली शून्यपदस्थितो गदयुतः कालानलस्यादृतः ॥ ३५ ॥

यदि पूर्वनेवाला दूत काले या भगवें कपड़े पहने हो कि जिसके दांतों में धाव हो  
शीश मुँड़ाये हो व बदन में तेल लगाये हो व हाथ में रस्सी लिये हो व दीन हो व  
उत्तर देने में समर्थ और भस्म, अङ्गार, कपाल व मूसल को धारे कालाव नहे पैरोंवाला  
गोकर सूर्यास्त के समय पूछने को आवे तो रोगी कालानल से आदर किया जाता यानी  
गजाता है ॥ ३५ ॥

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ।

अकस्मादिन्द्रियोत्पातः सञ्जिपाताग्रलक्षणम् ॥ ३६ ॥

जिस रोगी के चित्त में एकाएकी विकार आजावे व अकस्मात् पुरुषों में उत्तम होजावे व अकस्मात् इन्द्रियों में उत्पात देखेजावें तो यह सन्निपात का पूर्व लक्षण होता है॥ ३६॥

शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतिर्विकृता भवेत् ।  
तदरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निवोध मे ॥ ३७ ॥

जिस मनुष्य का शरीर शीतल होगया हो और प्रकृति विकारयुक्त होगई हो यानी स्वभाव बदल गया हो वह अरिष्ट संक्षेप से जानना चाहिये अब विस्तार से मुझ से सुनो॥ ३७ ॥

दुष्टशब्देषु रमते शुद्धशब्देषु चाप्यति ।  
पश्चात्तापो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य बुरे वचनों को बकता हुआ शुद्धशब्दों को बहुतही बोलता है और जिसको पीछे से पछितावा होता है उसकी निस्संदेह मृत्यु होजाती है॥ ३८ ॥

हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारो वह्निसंनिभः ।  
महावैद्यो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्भवेद् ध्रुवमैः ॥ ३९ ॥

जिस मनुष्य का 'हुंकार' शीतल हो और 'फूत्कार' आगी के समान हो और जिस के पास महावैद्य ( वडा डाक्टर या हकीम ) भी विद्यमान हो तौ भी उसकी मृत्यु निश्चय कर होजाती है॥ ३९ ॥

जिह्वां विष्णुपदं ध्रुवं सुरपदं सन्मातृकामण्डल-  
मेतान्येवमरुन्धतीमसृतगुं शुक्रं ध्रुवं वा क्षणम् ।  
एतेष्वेकमपि स्फुटं न पुरुषः पश्येत्पुरः प्रेषितः  
सोऽवश्यं विशतीह कालवदनं संवत्सरादूर्ध्वतः ॥ ४० ॥

जीभ, आकाश, ध्रुव, देवमार्ग, मातृकामण्डल, अरुन्धती, चन्द्रमा, शुक्र और अगस्ति इन्हों में से एक को भी पहले से भेजा हुआ जो पुरुष प्रकट नहीं देखता है वह वर्षभरे के बाद काल के मुख में अवश्य समाजाता है॥ ४० ॥

अरशिमविम्बं सूर्यस्य वह्नेः शीतांशुमालिनः ।  
द्वृष्टैकादशमासायुर्नरश्चोर्ध्वं न जीवति ॥ ४१ ॥

जो मनुष्य सूर्य, आगी और चन्द्रमाके मण्डलको किरणरहित देखता है वह ग्यारह मासकी आयुवाला होता हुआ उससे अधिक नहीं जीसका है॥ ४१ ॥

वाप्यां पुरीषमूत्राणि सुवर्णं रजतं तथा ।

प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासान्न जीवति ॥ ४२ ॥

जो पुरुष स्वभ अथवा जाग्रत् अवस्था में बावलीके भीतर विष्टा, मूत्र, सुवर्ण और चांदी को देखता है वह दशमास से अधिक नहीं जीता है ॥ ४२ ॥

क्वचित्पश्यति यो दीपं सुवर्णं च कपान्वितम् ।

विरूपाणि च भूतानि नव मासान्न जीवति ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य दीपक व कसौटी पर कसा हुआ सोना और समस्त प्राणियों को कभी भी विपरीतसा देखता है वह नवमास से अधिक नहीं जीसकता है ॥ ४३ ॥

स्थूलाङ्कोऽपि कृशः कृशोपि सहसा स्थूलत्वमालभ्यते

प्रासो वा कनकप्रभां यदि भवेत्कूरोऽपि कृष्णच्छविः ।

शूरो भीरु सुधीरधर्मनिपुणः शान्तो विकारी पुमा-

नित्येवं प्रकृतिः प्रयाति चलनं मासाष्टकं जीवति ॥ ४४ ॥

जिस पुरुष का स्वभाव ऐसा बदल जावे कि जिससे मोटा हो वह दुबला, जो दुबला ह मोटा व जो कूर या काला वर्ण वह सुवर्णसा, जो शूरवीर वह डरपोक, जो धर्मी ह अधर्मी और जो शान्तिमान् वह विकारवान् भासने लगे तो वह आठ महीना पर्यन्त जीता है ॥ ४४ ॥

पीडा भवेत्पाणितले च जिह्वा मूले तथा स्याद्वधिरं च कृष्णम् ।

विद्धं न च उलायति यत्र यष्ट्या जीवेन्मनुष्यः सहि सप्तमासम् ॥ ४५ ॥

जिस पुरुष की हथेली और जीभ के जड़ में पीडा होती हो व रुधिर काला पड़गया ही और जिस अङ्ग में लाठी से मारागया हो वहां दुखता न हो तो वह मनुष्य सातमास पर्यन्त जीता रहता है ॥ ४५ ॥

मध्याङ्कुलीनां त्रितयं न वक्रं रोगं विना शुष्यति यस्य कण्ठः ।

मुहुर्मुहुः प्रश्नवशेन जाज्यात् षडभिः स मासैः प्रलंयं प्रयाति ॥ ४६ ॥

जिस मनुष्य की बीचकी तीन अंगुलियाँ न मुड़तीहों व रोग के विना कण्ठ ( गला ) सुखता हो और बारम्बार पूछने से जड़ता होजावे यानी पूर्वापर का अनुसन्धान न रहे तो वह कः मास में मरजाता है ॥ ४६ ॥

न यस्य स्परणं किञ्चिद्दिवते स्तनचर्मणि ।

सोऽवश्यं पञ्चमे मासि स्कन्धारुढो भविष्यति ॥ ४७ ॥

जिसके देहकी खाल में कुछ स्परण नहीं रहता है यानी चाम शून्य पड़जाती है वह मनुष्य पांचवें महीना में अवश्य चार जनों के कन्धेपर चढ़ा हुआ जाता है यानी मरजाता है ॥ ४७ ॥

यस्य न स्फुरति ज्योतिः पीड्यते नयनद्रयम् ।

मरणं तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम् ॥ ४८ ॥

जिसकी आंखों की ज्योति फुरती न हो और दोनों नेत्रों में पीड़ा होती हो तो उसका मरण चौथे मास में अवश्य कहा है ॥ ४८ ॥

दन्ताश्च वृषणौ यस्य न किञ्चिदपि पीड्यते ।

तृतीयं मासमावश्यं कालाङ्गायां भवेन्नरः ॥ ४९ ॥

जिस मनुष्य के दांत और अण्डकोश दबाने परभी कुछ पीड़ित न होते हों तो उसीसरे मास में अवश्य ही कालकी आङ्गा में होजावेगा ॥ ४९ ॥

कालो दूरस्थितो वापि येनोपायेन लक्ष्यते ।

तं वदामि समासेन यथादिष्टं शिवागमे ॥ ५० ॥

दूरपर टिका हुआ भी काल जिस उपाय से लखाजाता है, उस उपाय को मैं शिव शास्त्रानुसार संक्षेप से कहता हूँ कि ॥ ५० ॥

एकान्तं विजनं गत्वा कृत्वाऽऽदित्यं च पृष्ठतः ।

निरीक्षयेन्निजच्छायां कण्ठदेशे समाहितः ॥ ५१ ॥

एकान्त विजन बन में जाकर सूर्य को पीठ देकर सावधान होता हुआ जो मनुष्य अपनी छाया को कण्ठदेश में निहारता है ॥ ५१ ॥

ततश्चाकाशमीक्षेत द्विं परब्रह्मणे नमः ।

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततः पश्यति शंकरम् ॥ ५२ ॥

और आकाश को देखता हुआ “ उं हीं परब्रह्मणे नमः ” इस मन्त्र को एकसौ आवार जपता है वह शंकर जी का दर्शन करता है ॥ ५२ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ।

षणमासाभ्यासयोगेन भूचराणां पर्तिर्भवेत् ॥  
वर्षद्वयेन तेनाथ कर्ता हर्ता स्वयं प्रभुः ॥ ५३ ॥

कि जिनका शरीर साफ़ विलौर पत्थर के समान सफेद सोहता है जो कि अनेकानेक रूपों को धरते हुए पापों को इरते हैं इस भाँति छः मास अभ्यास करने से योगी प्राणियों का स्वामी होता है और दो वर्ष अभ्यास रखने से कर्ता व हर्ता होकर स्वयं प्रभु हो जाता है ॥ ५३ ॥

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानन्दमेव च ।  
सतताभ्यासयोगेन नास्ति किञ्चित्सुदुर्लभम् ॥ ५४ ॥

नित्य अभ्यास करने से भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों का ज्ञान व परम आनन्द को पाता है और कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो उसको दुर्लभ हो ॥ ५४ ॥

तदूपं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योम्नि निर्मले ।  
षणमासान्धृत्युमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ॥ ५५ ॥

निर्मल आकाश में जो योगी उस पूर्वोक्त शिवरूप को कालावर्ण देखता है वह निःसन्देह छः मास में मृत्यु को पाता है ॥ ५५ ॥

पीते व्याधिर्भयं रक्ते नीले हानिं विनिर्दिशेत् ।  
नानावर्णेऽथ वेत्तस्मिन्सद्वश्च गीयते महान् ॥ ५६ ॥

पीला देखे तो व्याधि, लाल देखे तो भय, नीला देखे तो हानि कहना चाहिये और यदि नानावर्ण देखे तो वह योगी बड़ा भारी सिद्ध गाया जाता है ॥ ५६ ॥

पादे गुल्फे च जँठरे विनाशः क्रमशो भवेत् ।  
विनश्यतो यदा बाहू स्वयन्तु प्रियते ध्रुवम् ॥ ५७ ॥

यदि आया में क्रप से पांव, टखना और पेट को नहीं देखता है तो उस योगी का विनाश होजाता है अथवा भुजाओं को नहीं देखता है तो वह योगी निश्चय कर आपही मरजाता है ॥ ५७ ॥

वामबाहुस्तथा भार्या नश्यतीति न संशयः ।  
दक्षिणे बन्धुनाशोहि मृत्युं मासं विनिर्दिशेत् ॥ ५८ ॥

यदि आई भुजा को न देखे तो निस्संदेह भार्या का विनाश होजाता है और यदि

<sup>१</sup> आकाशे <sup>२</sup> कथ्यते <sup>३</sup> तदग्रन्थी घुटिके गुलफौ <sup>४</sup> उदरे <sup>५</sup> कथयेत् ॥

दाहिनी भुजा को न देखे तो बन्धुओं का विनाश होता है और महीना भरे में उस योगी की भी मृत्यु कहना चाहिये ॥ ५८ ॥

**अशिरो मासमरणं विना जड्जे दिनाष्टकम् ।**

**अष्टाभिः स्कन्दनाशेन छायालोपेन तत्कणात् ॥ ५९ ॥**

यदि शीश न देखे तो मास भर में, जड़ा न दीखे तो आठ दिन में, कन्धों को न देखे तो भी आठ दिन में मरण होता है और यदि छाया का लोप होजाता है तो उसी क्षण में योगी मरजाता है ॥ ५९ ॥

**प्रातः पृष्ठगते रवौ च निमिषाच्छ्रायाङ्गुलीश्चाधरं**

**दृष्ट्वार्थेन मृतिस्त्वनन्तरमहोच्छ्रायां नरः पश्यति ।**

**तत्कणांसकरास्यपार्श्वहृदयाभावेक्षणार्धात्स्वयं**

**दिङ्गूढो हि नरः शिरो विगमतो मासांस्तु पद्म जीवति ॥ ६० ॥**

जो पुरुष प्रभातसमय सूर्य को पीठ की तरफ देकर छाया पुरुष की अंगुलियों व ओटों को नहीं देखता है वह निमिषमात्र में मरजाता है और जो छाया को ही नहीं देखता है वह आधे निमिष में मरता है और जो छाया के कान, कन्धे, हाथ, मुख, पार्श्व और हृदय को नहीं देखता है तो उसका आधे क्षण में मरण होजाता है और जो छाया का शीश नहीं देखता है व जिसमें दिशाओं का ज्ञान नहीं रहता है वह छः मास पर्यन्त जीता रहता है ॥ ६० ॥

**एकादिषोडशाहानि यदि भानुर्निरन्तरम् ।**

**वहेद्यस्य च वै मृत्युः शेषाहेन च मासिके ॥ ६१ ॥**

यदि मास के पहले दिनसे लेकर सोलह दिन पर्यन्त जिसका सूर्यस्वर ही लगातार बहता रहे तो उसकी मृत्यु शेष दिन में होजाती है ॥ ६१ ॥

**संपूर्णं वहते सूर्यश्रन्दमा नैव दृश्यते ।**

**पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥ ६२ ॥**

जिस मनुष्य का सूर्यस्वर ही पूरा बहता रहे और चन्द्रस्वर न देखा जाता हो तो उस की मृत्यु पक्षभर में होजाती है यह कालज्ञाताओं ने कहा है ॥ ६२ ॥

**मूत्रं पुरीषं वायुश्च समकालं प्रवर्तते ।**

**तदाऽसौ चलितो ज्ञेयो दशाहे प्रियते ध्रुवम् ॥ ६३ ॥**

जिस पुरुषके मूत्र, मल और वायु एकही बार निकलते हैं तो उसको चलित जानना चाहिये और वह दश दिन में अवश्य ही मरजाता है ॥ ६३ ॥

संपूर्णं वहते चन्द्रः सूर्यो नैव च दृश्यते ।

मासेन जायते मृत्युः कालज्ञेनानुभाषितम् ॥ ६४ ॥

जिस मनुष्य का चन्द्रस्वरही पूरा वहता रहे और सूर्यस्वर न देखाजाता हो तो उसकी मृत्यु एकमास में हो जाती है ऐसा कालज्ञेताओं ने कहा है ॥ ६४ ॥

अरुन्धतीं ध्रुवं चैव विष्णोऽस्त्रीणि पदानि च ।

आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥ ६५ ॥

अरुन्धती, ध्रुव, विष्णुपद और चौथा मातृमण्डल इनकों आयुर्हीन लोग नहीं देखते हैं ॥ ६५ ॥

अरुन्धती भवेजिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।

श्रुवो विष्णुपदं ज्ञेयं तारकं मातृमण्डलम् ॥ ६६ ॥

जिह्वा को अरुन्धती, नासिका के अग्रभाग को ध्रुव, भौहों को विष्णुपद और नेत्रस्थ तारा को मातृमण्डल कहते हैं ॥ ६६ ॥

नवश्रुवं सप्तघोषं पञ्चतारां त्रिनासिकाम् ।

जिह्वामेकदिनं प्रोक्तं प्रियते मानवो ध्रुवम् ॥ ६७ ॥

यदि भौहों को न देखे तो नवदिन में, कानों का शब्द न सुने तो सात दिन में, चक्षुस्थ तारा को न देखे तो पांच दिन में, नासा को न देखे तो तीन दिन में और जीभ को न देखे तो मनुष्य एक दिन में निश्चय कर मरजाता है ॥ ६७ ॥

कोणावक्षणोऽङ्गलिभ्यां किञ्चित्पीड्य निरीक्षयेत् ।

यदा न दृश्यते विन्दुर्दशाहेन भवेन्मृतः ॥ ६८ ॥

आंखों के कोनों को अंगुलियों से कुछेक दबाकर निहारे यदि दबाने से जलका विन्दु न देख पड़ता हो तो वह मनुष्य दश दिवस में मृतक हो जाता है ॥ ६८ ॥

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन च ।

जपैध्यानेन योगेन जायते कालवञ्चना ॥ ६९ ॥

तीर्थों में स्नान, दान, तपस्या, पुण्य, जप, ध्यान और योग करने से काल की वञ्चना हो जाती है यानी ऊपर आया हुआ भी काल टल जाता है ॥ ६९ ॥

शरीरं नाशयन्त्येते दोषा धातुमलास्तथा ।

समस्तु वायुर्विज्ञेयो बलतेजोविवर्धनः ॥ ७० ॥

धातु व मल आदि ये दोष शरीर को विनष्ट कर देते हैं और सम वायु वल व तेज का बढ़ानेवाला जानना चाहिये ॥ ७० ॥

रक्षणीयस्ततो देहो यतो धर्मादिसाधनम् ।

योगाभ्यासत्वमायान्ति साधिजप्यास्तु साध्यताम् ॥

असाध्या जीवितं ग्रन्ति न तत्रास्ति प्रतिक्रिया ॥ ७१ ॥

उसी से देह की रक्षा करनी चाहिये कि जिससे धर्म आदिकों का साधन होता है और साधिजप्य साध्यता को साधते हुए योगाभ्यास को प्राप्त होते हैं और असाध्य होते हुए जीवन को विनाशते हैं इसलिये उसका कोई प्रतीकार नहीं है ॥ ७१ ॥

येषां हृदि स्फुरति शाश्वतमद्वितीयं

तेजस्तमोनिवहनाशकरं रहस्यम् ।

तेषामखण्डशशिरम्यसुकान्तिभाजीं

स्वप्रेऽपि नो भवति कालभयं नराणाम् ॥ ७२ ॥

जिनके हृदय में अनादि, अद्वितीय, अन्धकारसमूहनाशक, गोपनीय तेज ( शिव-स्वरोदयज्ञान ) फुरता है उन अखण्डित चन्द्रसम रमणीय सुकान्तिभाजी नरों के स्वभ में भी कालकी भय नहीं रहती है ॥ ७२ ॥

इडा गङ्गेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी ।

मध्ये सरस्वतीं विद्यात्प्रयागादिसमस्तथा ॥ ७३ ॥

इडा नाड़ी गङ्गा, पिङ्गलानाड़ी यमुनानदी और वीचकी सुषुम्ना नाड़ी सरस्वती जाननी चाहिये और इन तीनों नाड़ियों के संगम को प्रयाग आदि के समान समर्खना उचित है ॥ ७३ ॥

आदौ साधनमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।

बद्धपद्मासनो योगी बन्धयेद्विद्वानकम् ॥ ७४ ॥

आदिमें साधनकोही शीघ्र प्रत्ययकारक कहा है इसलिये पद्मासनको बांधेहुए योगी बद्धियानक नामक आसनको बांधे यानी अपानकी गतिको ऊपर करके नाभिरन्ध्रके समीप लावे ॥ ७४ ॥

पूरकः कुम्भकश्चैव रेचकश्च तृतीयकः ।

ज्ञातव्यो योगिभिर्नित्यं देहसंशुद्धिहेतवे ॥ ७५ ॥

पूरक, कुम्भक और तीसरा रेचक ये तीनों प्राणायाम योगियों को देहकी शुद्धिके लिये सदैव जानना चाहिये ॥ ७५ ॥

पूरकः कुरुते वृष्टिं धातुसाम्यं तथैव च ।

कुम्भके स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षाविवर्धनम् ॥ ७६ ॥

उन तीनों में से पूरक प्राणायाम ( वाहर की वायु को भीतर खींचना ) वृष्टि से देह को सींचता है और समस्त धातुओं को समान करता है और कुम्भक प्राणायाम ( वाहर भीतर की वायु को स्थिर रखना ) देहकी धातुओं का स्तम्भन ( जहाँ की तहाँ रखना ) करता है और जीवरक्षा का बढ़ानेवाला होता है ॥ ७६ ॥

रेचको हरते पापं कुर्याद्योगपदं त्रजेत् ।

पश्चात्संग्रामवत्तिष्ठेल्लयबन्धं च कारयेत् ॥ ७७ ॥

रेचक प्राणायाम ( भीतर की वायु वाहर निकालना ) पाप को हरता है इस भाँवि जो प्राणायाम करता है वह योगपद को पाता है और जो पीछे से संग्राम के समान टिकता है वह लयबन्ध को भी करासक्ता है ॥ ७७ ॥

कुम्भयेत्सहजं वायुं यथाशक्ति प्रकल्पयेत् ।

रेचैयेच्चन्द्रमार्गेण सूर्येणांपूरयेत्सुधीः ॥ ७८ ॥

वुद्धिमान् मनुष्य स्वाभाविक वायु को अपनी शक्ति के अनुसार कुम्भक प्राणायाम से रोके व चन्द्रस्वर से रेचक करे और सूर्यस्वर से पूरक प्राणायाम को करे ॥ ७८ ॥

चन्द्रं पिबति सूर्यश्च सूर्यं पिबति चन्द्रमाः ।

अन्योन्यकालभावेन जीवेदाचन्द्रतारकम् ॥ ७९ ॥

जिसके चन्द्रस्वर को सूर्यस्वर और सूर्यस्वर को चन्द्रस्वर परस्पर समय समय पर पीता है वह चन्द्रमा व तारों की स्थिति पर्यन्त जीता है ॥ ७९ ॥

स्वीयाङ्गे बहते नाडी तन्नाडीरोधनं कुरु ।

मुखबन्धममुञ्चन्वै पवनं जायते युवा ॥ ८० ॥

अपने अङ्ग में जो नाड़ी बहती हो उसको रोककर व मुखको बांध कर जो योगी पवन को नहीं छोड़ता है वह वृद्ध हुआ भी युवा होजाता है या कि वह योगी सदैव ज्वानही बना रहता है ॥ ८० ॥

१ एवं यो योगी प्राणायामत्रयं कुर्यात् २ कुम्भकप्राणायामं कुर्यात् ३ रेचकप्राणायामम्  
४ पिङ्गलया पूर्णयेदिति ॥

मुखनासाक्षिकर्णान्तानङ्गलीभिर्निरोधयेत् ।

तत्त्वोदयमिति ज्ञेयं पण्मुखीकरणं प्रियम् ॥ ८१ ॥

मुख, नासिका, आंखी और कान पर्यन्त भाग को अंगुलियों से रोके यानी कनिष्ठा व अनामिका से मुँहको, व मःयमासे नथुनों को, तर्जनी से अंखों को और अँगूठे से कानों को रोकदेवे तो इससे तत्त्वों के उद्यका भान होजाता है यह प्यारा पण्मुखीकरण जानना चाहिये ॥ ८२ ॥

तस्य रूपं गतिः स्वादो मण्डलं लक्षणं त्विदम् ।

सवेच्चि मानवो लोके संसर्गादपि मार्गवित् ॥ ८२ ॥

उसका रूप, गति, स्वाद, मण्डल और लक्षण इस सबों को जो मनुष्य लोक में जानता है वह हेलमेल से भी मार्गवेत्ता होजाता है ॥ ८२ ॥

निर्णशो निष्कलो योगी न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।

वासनामुन्मनां कृत्वा कालं जयति लीलैया ॥ ८३ ॥

जो योगी आशारहित व शुद्धरूप होकर किसी पदार्थ की भी चिन्ता नहीं करता है तो वह वासना को त्याग कर लीला ( अनायास ) से काल को जीतता है ॥ ८३ ॥

विश्वस्य वेदिका शक्तिर्नेत्रांभ्यां परिदृश्यते ।

तत्रस्थन्तु मनो यस्य यामैमात्रं भवेदिह ॥ ८४ ॥

तस्यायुर्वर्धते नित्यं घटिकात्रयमानतः ।

शिवेनोक्तं पुरा तन्त्रे सिद्धस्य गुणगद्वरे ॥ ८५ ॥

विश्वकी जाननेहारी शक्ति नेत्रों से देखी जाती है वहां पर जिसका मन एक पहर मात्र टिकजाता है तो उसकी आयुर्दीय तीन घटियों के प्रमाण से नित्य बढ़ा करती है पुरा तन समय सिद्धों के गुणसमूहवाले तन्त्रशास्त्र में शिवजी ने कही है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

बद्धं पद्मासनस्था गुदगतपवनं सञ्चिरुद्धयामुमुच्चै-

स्तं तस्या पानरन्त्रकमजितमनिलं प्राणशक्त्या निरुद्ध्य ।

एकीभूतं सुषुम्ना विवरमुपगतं ब्रह्मरन्ध्रे च नीत्वा

निक्षिप्याकाशमार्गं शिवचरणरता यानिते केऽपि धन्याः ॥ ८६ ॥

१ नितरामपवार्येदिति २ जानाति ३ मार्गं वेच्चति मार्गवेत्ता भवतीति ४ निर्गता आशालिप्यस्यादिति ५ “लीलां विदुः केलिविलासखेलाश्रुंगारभावप्रभवकियासु” (इति विश्वप्रकाशः) ६ विश्वन्ति भूतान्यस्मिन्निति विश्वम् संसारस्तस्य वेदिका शांत्रो ७ लोचनाभ्याम् ८ प्रदरमात्रम् ९ सदाशिवेन भणितम् ॥

पद्मासन को बांधकर गुदा में टिके अपानवायु को रोककर उसे ऊंचे को ले जावे व पानरन्ध्रमें जीतेहुए पवनको प्राणशक्ति के साथ रोककर दोनों की एकता करे जब वे उनों एक होजावें तब सुषुप्ता नाड़ी के विवर ( रन्ध्र ) में पहुँचावें फिर ब्रह्मरन्ध्रमें ले-कर आकाश मार्ग में छोड़ दें इस भाँति शिवजी के चरणों में रहत्हुए जो कोई योगी नोंग मरजाते हैं वे धन्य कहलाते हैं ॥ २६ ॥

एतज्जानाति यो योगी एतत्पठति नित्यशः ।

सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वाञ्छितं फलम् ॥ २७ ॥

जो योगी इस स्वरोदय ज्ञानको जानता है व सदैव पढ़ता है तो वह सर्वदुःखों से य हुआ वाञ्छितफल को पाता है ॥ २७ ॥

स्वरज्ञानं नरे यत्र लक्ष्मीः पादतले भवेत् ।

सर्वत्र च शरीरेऽपि सुखं तस्य सदा भवेत् ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यमें स्वरका ज्ञान रहता है उसके पादतल में लक्ष्मी वास करती है और सब उनों में उसके शरीरमें सुख सदैव मिलता है ॥ २८ ॥

प्रणीवः सर्ववेदानां ब्राह्मणो भास्त्करो यथा ।

मृत्युलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि ॥ २९ ॥

जैसे कि सब वेदों के मध्य में प्रणव ( अंकार ) व मृत्युलोक में ब्राह्मण व सूर्य नीय होते हैं वैसेही स्वरज्ञानी पुरुष भी पूज्य होता है ॥ २९ ॥

नाडीत्रयं विजानाति तत्त्वज्ञानं तथैव च ।

नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्षकोटिरसायनम् ॥ ३० ॥

जो मनुष्य पूर्वोक्त तीनों नाड़ियों को जानता है और जिसको तत्त्वों का ज्ञान होता है सके समान लाखों व करोड़ों रसायन नहीं हैं ॥ ३० ॥

एकाक्षरप्रदातारं नाडीभेदविवेचकम् ।

पृथिव्यां नास्ति तद्वृत्यं यद्वत्वा चानृणो भवेत् ॥ ३१ ॥

नाड़ीभेदका विवेचन करनेवाला जो एकाक्षरमात्रका भी दाता हो तो उसके लिये वीषएडला में वह द्रव्य नहीं है जिसको देकर उऋण होजावे यानी एकाक्षरप्रदाता गुरुसे उद्धार नहीं होसक्ता है ॥ ३१ ॥

<sup>१</sup> ध्रुवस्ताररिद्विवृद्धस्वेदादिस्तारकोऽव्ययः । प्रणवश्च त्रिमात्रोथ अंकारो यजो-तिरादिमः ( इति मात्रिकानिधरण्डुः ) २ ब्रह्म वेदं वेत्ति जानाति वा ब्राह्मणः ३ भास्त्कारः सूर्यः ॥

स्वरस्तत्त्वं तथा युद्धं देवि वश्यं ख्ययस्तथा ।  
गर्भाधानं च रोगश्च कलाधीनैव मुच्यते ॥ ६२ ॥

अहो देवि ! स्वर, तत्त्व, युद्ध, ख्ययोंका वशीकरण, गर्भाधान और रोग इन सबों का ज्ञान आधी कलासेही कहा जाता है ॥ ६२ ॥

एवं प्रवर्तिं लोके प्रसिद्धं सिद्धयोगिभिः ।  
चन्द्रार्कग्रहणे जाप्यपठतां सिद्धिदायकम् ॥ ६३ ॥

इसभक्तार लोक में प्रवृत्त हुआ व सिद्ध योगियों से प्रसिद्ध किया हुआ भी स्वरोदय का ज्ञान चन्द्र व सूर्य के ग्रहण में जपते व पढ़ते हुए जनों को सिद्धिदायक होता है ॥ ६३ ॥

**I** स्वस्थाने तु समासीनो निद्रां चाहारमल्पकम् ।  
चिन्तयेत्परमात्मानं यो वेद स भविष्यति ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य अपने स्थानपर बैठाहुआ निद्रा व भोजन को अल्प करता व परमात्मा के चिन्तन करता व जानता है वह स्वरज्ञानी होजाता है ॥ ३६४ ॥

इति शिवस्वरोदयाध्यायः ॥

अथ ग्रन्थमुपसंहरन्कविवंशवर्णनमाह ।  
शाके शैलगुणाण्टभूपरिमिते वर्षे द्विगोत्राङ्ककौ  
भाद्रे मास्यसिते गृहेशतिथिके भूनन्दने वासरे ।  
नानाग्रन्थमतानुगोतिविशदो ग्रन्थो मया भाषितो  
भूयाङ्गव्यतराय सर्वविदुषां सामुद्रिको नित्यशः ॥ १ ॥

शाके १८३७ संवत् १६७२ भाद्रमास कृष्णपक्ष षष्ठी मङ्गलवार दिवस में नानाग्रन्थमतानुयायी विशदरूप सामुद्रिक ग्रन्थको मैंने कहा है वह सदैव सर्वविद्वान्महोदयों के मङ्गल के लिये होवे ॥ १ ॥

सामुद्रिकं शास्त्रवरं विशुद्धं प्रोक्तं शिवायै शशिशेखरेण ।

आदाय सर्वं भणितं मयैतद् भूयान्मुदे मणिडतपणिडतानाम् ॥ २ ॥

विशुद्ध, शास्त्रों में श्रेष्ठ जिस सामुद्रिकशास्त्र को चन्द्रचूड शिवजीने शिवा (पार्वती) से कहा है वह सब लेकर इस सामुद्रिक को मैंने बनाया है वह गुणगणमणिडत पणिडत महोदयों की प्रीति के लिये होने ॥ २ ॥

सामुद्रिकं शास्त्रमिदं मनोज्ञं द्वाविंशमब्दं मृगितं नितान्तम् ।  
नो देयमेतत्सुधिया कदापि लोकद्वुहां निन्दनतत्पराणाम् ॥ ३ ॥

यह सामुद्रिकशास्त्र मनोज्ञ है कि जिसको बाइर्सवर्षपर्यन्त, पुराण, अंगरेजी, फारसी तथा बंगला व महाराठी आदिकों में अत्यन्त ही गवेषणा किया है इसको लोकद्वीपी निन्दकजनों के लिये विद्वानों को कदापि नहीं देना चाहिये ॥ ३ ॥

शान्ताय शाकाय शिवप्रियाय शिष्याय देयं गुरुभक्तकाय ।  
वाणी भवेन्नो विफला कदापि स्वधर्मपालात्सफलं समस्तम् ॥ ४ ॥

शान्त, शाक, शिवप्रिय, गुरुभक्त शिष्य के लिये देना चाहिये उसकी वाणी कदापि निष्फल नहीं होसकती है क्योंकि अपने धर्म की पालना से सबही सफल होता है ॥ ४ ॥

सामुद्रिकाभ्यासपरा नितान्तं सत्येन युक्ताः सरलस्वभावाः ।  
सद्धर्मवन्तो मनुजा हि नूनं कीर्ति लभन्तां विमलां दिग्नते ॥ ५ ॥

सत्यवान् सरलस्वभाववाले जो मनुष्य सामुद्रिक के अभ्यास में अत्यन्त परायण होवेंगे वे लोग अवश्य सचेत्पर्यवाले होकर दिग्नतों में विमल कीर्ति को पावेंगे ॥ ५ ॥

फलन्ति वाण्यो मनुजस्य तस्य सत्येन युक्तं हृदयं हि यस्य ।  
तेनोदितं वै वचनं जनेभ्यः प्राप्नोति सिद्धिं न मृषा कदापि ॥ ६ ॥

जिस मानव का हृदय सत्यसम्पन्न होता है उसकी वाणियां सफल होती हैं उस करके जनों के लिये जो वचन कहा जाता है वह सिद्धि को पाता हुआ भूठा कभी नहीं होसकता है ॥ ६ ॥

पठन्तु नित्यं सुधियो महान्तो धनं लभन्तां जनयूथकेभ्यः ।  
पुत्रप्रपौत्रादियुता भवन्तु चायुष्यवन्तो नितरामुदाराः ॥ ७ ॥

जो विद्वानलोग इसको सदैव पढ़ेंगे वे महन्त होकर जनसमूहों से धन को पावेंगे और पुत्र, प्रपौत्र आदिकों से संयुक्त होवेंगे व आयुर्व्यवाले होकर बड़ी उदार गिनेजावेंगे ॥ ७ ॥

श्रीमत्प्राज्ञनरायणेन प्रभुषा सद्धर्मविद्याविदा  
सर्वेषामुपकारकाय नितरामाज्ञापितोहं मुदा ।  
नाम्ना शक्तिधरः सदाशिवपदद्वन्द्वे रतो नित्यश-  
श्रक्ते ग्रन्थमनुक्तम् मतिमतां सामुद्रिकं सौख्यदम् ॥ ८ ॥

श्रीमान् रायबहादुर मुंशी प्रयागनारायणजी भारत भेरे स्वामी जोकि सच्चे धर्म व  
विद्या के जाननेवाले हैं उन्होंसे सबों के उपकार के लिये आज्ञापित, सदाशिवजी के  
युगल पदारविन्द के सेवक शक्तिधरनामक मैने मतिपानों को सदैव सौख्यदायक सर्वोत्तम  
सामुद्रिक ग्रन्थ को बनाया है ॥ ८ ॥

पुरे मुरादावादाख्ये शुक्लवंशोद्धवः सुधीः ।

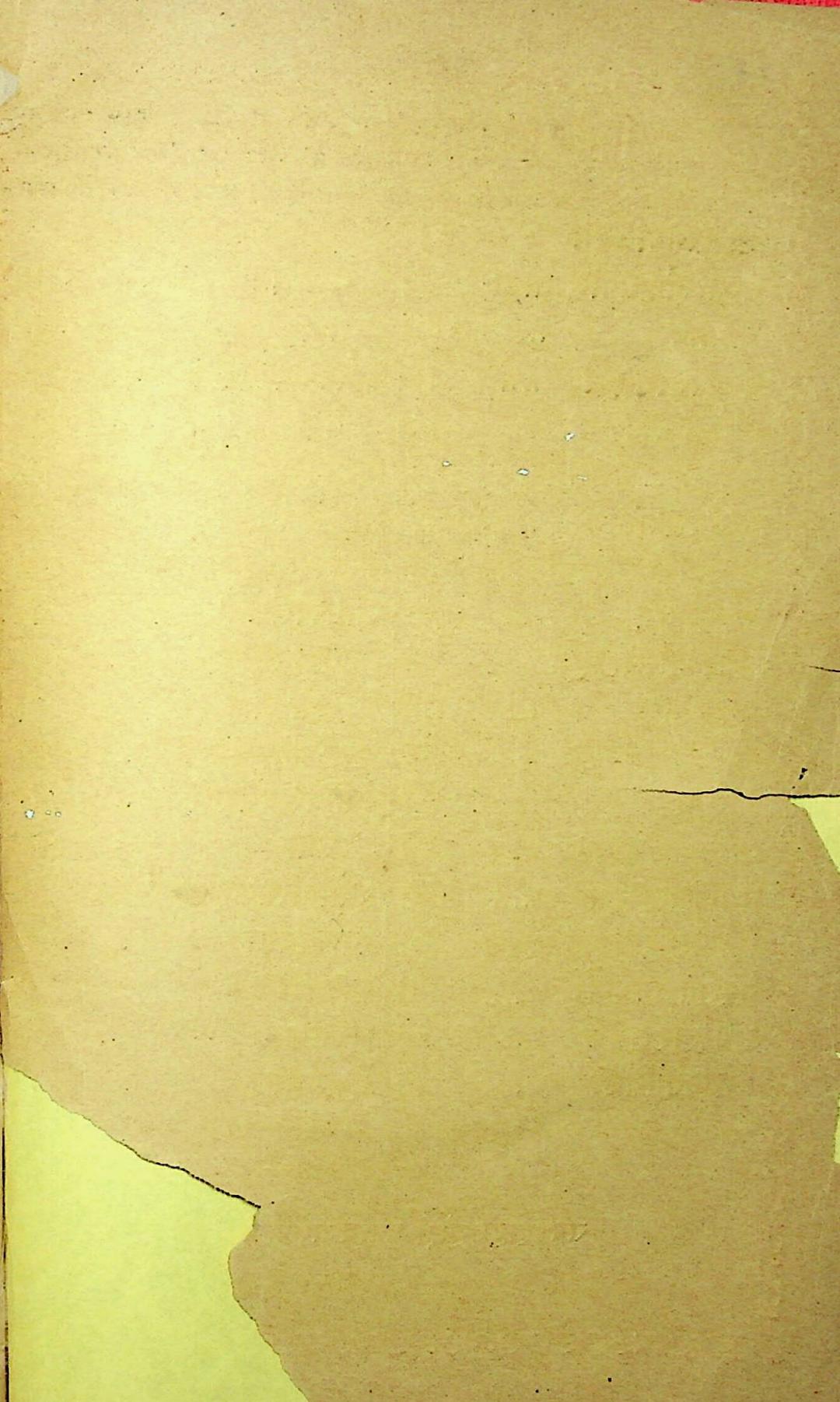
आसीद्दुर्गाप्रसादादाख्यो बलभद्रस्तु तत्सुतः ॥ ९ ॥

तस्यात्मजः शक्तिधरः शिवपादार्चने रतः ।

चक्रे सामुद्रिकं शास्त्रं सरलं सर्वसम्प्रतय ॥ १० ॥

इति श्रीमद्रायवहादुरमुंशीप्रयागनारायणाज्ञापितद्विजवरशक्तिधरसंकलितः  
सामुद्रिकः समाप्तिं पफाणेति शम् ॥

समाप्तोयं ग्रन्थः ॥



## विक्रयार्थ पुस्तकों का सूचीपत्र ।

संग्रहशिरोमणिमूल	३)	बृहत्संहिता अर्थात् वाराही-
भिद्धान्तशिरोमणि गोला-		संहिता .... १॥
ध्याय ....	१॥)	तथा .... १॥)
जातकाभरण मूल ....	४	कर्मविपाकसंहिता .... ५॥)
मुहूर्तचन्द्रिका ....	५	तथा .... ६॥)
मुहूर्तचिन्तामणिसटीक	६	बालविवेकिनी सटीक .... ७॥)
मुहूर्तगणपति ....	७॥	जातकचन्द्रिका .... ८॥)
मुहूर्तमार्तण्ड संस्कृतटीका	८॥	जातकाभरण सटीक .... ९॥)
होरामकर्णद	९॥	जातकालंकार सटीक .... १०॥)
जातकपारिजातमूल	१०	तथा सटीक .... ११॥)
रवभ्रविचार	११	तथा भाषा .... १२॥)
मुहूर्तचक्रदीपिका ....	१२॥	लग्नचन्द्रिका सटीक .... १३॥)
अहलाघव	१३	ज्योतिस्सारावली .... १४॥)
नारचन्द्रदीपिका ....	१४	तथा .... १५॥)
सामुद्रिकसंस्कृत	१५॥	ज्योतिस्सिद्धान्तसारसंग्रह .... १६॥)
प्रश्नविद्यादेष्काणनिरूपण	१६	रमलनवरन
नरपतिजयचर्या ....	१७	रमलसार .... १८॥)
समरसार सटीक	१८	तथा .... १९॥)
अङ्गुततरंगिणी	१९	दैवज्ञाभरण ....

मिलने का पता:-

रायबहादुर मुंशी प्रयागनारायण

मालिक नववाकिशोर प्रेर





